योग मन्दिर

जगत माता

मासिक जनवरी १९७८

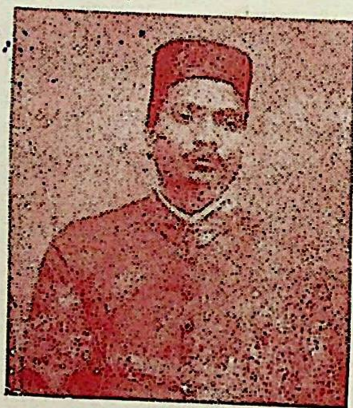
(विशेषांक)



लेखक : बाबू हरस्वरूप जी गुप्ता

बी० ए० एल० एल० बी०

आर्य रत्न

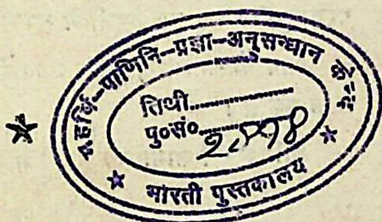


स्व० बाबू हरस्वरूप जी गुप्ता

बी० ए० एल० एल० बी०

॥ ओ३म् ॥

जगत माया



लेखक :

स्वर्गीय बाबू हरस्वरूप गुप्ता
बी० ए० एल० एल० बी०



सम्पादक

आचार्य भगवानदेव

प्राप्ति स्थान :

योग मन्दिर प्रकाशन

२-पार्क ऐवेन्यू महारानी बाग, नई दिल्ली-११००१४

परिवार के आर्य रत्न

श्री चेतनस्वरूप गुप्ता

आपका जन्म ३ नवम्बर १९२२ को देहली में हुआ। १०वीं कक्षा तक अपने वतन नगीना जिला बिजनौर में शिक्षा प्राप्त की। उसके पश्चात् बी० ए० तक देहली में अभ्यास किया।

आप धीर गम्भीर, कुशल व्यापारी हैं। दिल्ली के प्रसिद्ध व्यापारियों में से एक है।

धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में आप रुचि रखते हैं।

भगवानदेव

मिलता है सच्चा सुख केवल,
भगवान् तुम्हारे चरणों में।
है विनती यही, छिन-२ पल-२,
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥
यदि वैरी सब संसार बने,
मेरा जीवन मुझ पर भार बने।
चाहे मोत गले का हार बने,
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥
चाहे संकट ने आ घेरा हो,
चाहे चारों ओर अन्धेरा हो।
पर चित्त न डगमग मेरा हो,
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥
चाहे अग्नि परीक्षा में जलना हो,
चाहे कांटों पर भी चलना हो।
चाहे छोड़ के देश बिछुड़ना हो,
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

परिवार के आर्य रत्न

श्री विनोदस्वरूप गुप्ता

आपका जन्म १० अगस्त १९३७ में नगीना जिला बिजनौर (उ० प्र०) में हुआ। सन् १९५७ में दिल्ली विश्वविद्यालय से आपने बी० कॉम किया।

आप कुशल और साहसी व्यापारी है। छोटी अवस्था में आपने कारोबार को सम्भाला जिसको पूर्ण निष्ठा से चला रहे हैं।

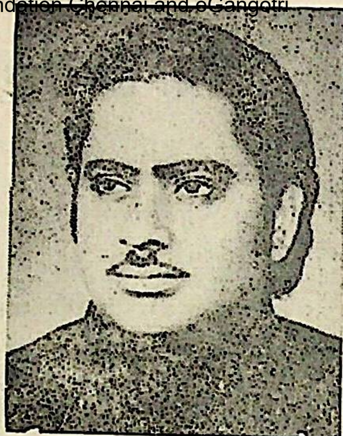
विनोदप्रिय, खेलकूद और योगाभ्यास में रुचि रखते हैं। सार्वजनिक कार्यों में काफी रुचि रखते हैं।

भगवानदेव

भरोसा कर तू ईश्वर पर,
तुझे धोखा नहीं होगा।
यह जीवन बीत जायेग,
तुझे रोना नहीं होगा॥

कभी सुख है कभी दुःख है,
यह जीवन धूप छाया है।
हँसी में ही बिता डालो,
बितानी ही यह माया है॥

सम्पादकीय



मुंशी प्रेमचन्द्र जी, शरद बाबू गुरुदत्त जैसे उद्देश्य पूर्ण उपन्यास लिखने वालों को छोड़कर बाकी सड़े-गले उपन्यासों को आग लगा देने को मन करता है।

वर्तमान उपन्यासकारों ने मानव जाति के जीवन से खिलवाड़ ही किया है। उपन्यासकार का लक्ष्य मानव मात्र के कल्याण का होना चाहिए। हीन, गिरावट, निराशा, अन्धविश्वास, रूढ़िवाद की भावनाएं नष्ट करके आत्मविश्वास, साहस कर्तव्यनिष्ठा देश भक्ति, भाई चारे। मानव-मानव के बीच प्यार की भावना पैदा करना हर उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

स्वर्गीय बाबू हरस्वरूप जी का लिखा 'जगत माया उपन्यास जो आज से ४५ वर्ष पूर्व लिखा गया था। पढ़कर हमें बहुत आनन्द की अनुभूति हुई। जिसको प्रकाशित करना हमने अपना धर्म समझा।

काश ! वर्तमान उपन्यास कार इस महत्वपूर्ण रचना से प्रेरणा लेकर मानव जाति के मनोरंजन की दृष्टि से नहीं, अपित्तु उनके सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखकर अपनी कलम चलाएंगे।

—भगवानदेव
सम्पादक

निमन्त्रण भेजें—कई वर्षों से योग प्रेमी भाई-बहन हमें अपने यहाँ "योग साधना शिविर" लगाने के निमन्त्रण भेजते रहे। समय अभाव के कारण प्रेमियों की आशाओं को हम पूर्ण नहीं कर सके।

इस वर्ष हमने कुछ समय "योग साधना शिविर" लगाने के लिए निकाला है। कृपया पत्र लिख कर स्वीकृति मंगा लें। भगवानदेव



लेखक का संक्षिप्त

जीवन-चरित्र

उपवन में कितने ही पुष्प खिलते हैं। उनमें से कुछेक तो अपनी सुरभि-सौन्दर्य की वासना से संसार को आनन्दमय कर देते हैं, कुछेक सुन्दर अट्टालिकाओं के ऊपर ऐश्वर्य प्रासादों में गुलदस्तों का रूप धारण कर अपनी शोभा पर इतराते हैं। और कुछ मालियों अथवा प्रेमीजनों के हाथों में हारों के खिलौने बनकर क्रीड़ा करते हैं। परन्तु कुछ अभागे अर्द्ध-विकसित पुष्प यौवन का सौन्दर्य पाने के पूर्व ही विश्व के इस सुन्दर कुसुमोद्यान से कवियों और प्रेमीजनों की दृष्टि पड़ने से पूर्व ही नोंच लिए जाते हैं। जो कभी पूर्ण विकास को प्राप्त होकर सुन्दर पुष्प बन जाते हैं वह किसी न किसी प्रकार राजप्रासादों में प्रेमीजनों के हाथों में, प्रेमिकाओं के कोमल कण्ठ में अथवा कवियों की कल्पना-सृष्टि में आदर प्रेम व श्रद्धा के पात्र हो ही जाते हैं, परन्तु अफसोस है उन कलियों पर जो बिना खिले ही या तो नोच ली जाती हैं अथवा मुरझा जाती हैं।

मनुष्य जीवन भी विश्व के इस मनोहर उद्यान में देश प्रेम, समाज-सुधार व ईश्वर भक्ति आदि सद्गुणों की सुगन्ध फैला रहा है। इन सद्-गुणों की सुगन्धि फैलाने वाला प्राणी फूल की कलियों की तरह या तो अपने स्वत्व से संसार को सुगन्धिमय कर देता है या अपने जीवन के आरम्भ में ही अपने यशस्वी जीवन की छटा को चमका कर संसार से विदा हो जाता है। अथवा उन पुष्पों की तरह जो जंगल ही में मुरझा जाते हैं अपना अस्तित्व खो बैठता है।

इस पुस्तक के यशस्वी लेखक स्वर्गीय बाबू हरस्वरूप जी गुप्त बी० ए०, एल एल० बी० २६ ही वर्ष की अल्प आयु में इस संसार से पुष्पोद्यान से चुने जाने वाले अर्द्ध विकसित पुष्पों की भांति चुन लिए गए। वे अपने इस अमूल्य जीवन में कुछ भी नहीं कर पाये, वे उन पुरुषों में थे जिनकी महक से संसार खिल उठता, परन्तु संसार चक्र की गति को नहीं पहिचाना जाता।

यू० पी० के जिला बिजनौर में "बढ़ापुर" नाम का एक कस्बा है। यहां की जलवायु अत्युत्तम व दृश्य मनोहर हैं। यहीं के प्रसिद्ध व्यक्ति ला० फकीरचन्द जी के घर में १८९७ ई० में श्री हरस्वरूप जी का जन्म हुआ। माता-पिता के स्वभावों का बच्चे पर बड़ा प्रभाव होता है। पिता बड़े ही निडर व दानशील व्यक्ति थे। माता विदुषी और धर्म-परायण थी। अतः बच्चे की शिक्षा में कोई कमी न रखी गई। ३ वर्ष की अल्पायु ही में बच्चे को हिन्दी की पहली पुस्तक पहाड़े, कई कविताएं व रामायण के दोहे चौपाइयां कण्ठ करादी गई। इस समय ही दुर्भाग्य से ला० फकीरचन्द जी का स्वर्गवास हो गया। इस आकस्मिक दैवीकोप से बच्चे की पढ़ाई व लालन-पालन पर बाधा तो पड़ी, परन्तु माता की योग्य संरक्षकता मिलने से श्री हरस्वरूप जी को पितृवियोग का दुःख अधिक कष्टदायक न प्रतीत हुआ। इसके बाद आपको बढ़ापुर की संस्कृत पाठशाला में बिठा दिया गया। वहां पर आपने अपनी असाधारण प्रतिभा से ३ ही वर्ष में सारी शिक्षा समाप्त कर दी और इसके बाद ९ वर्ष की आयु में आपको डी० ए० वी० स्कूल देहरादून में भेजा गया। बढ़ापुर जैसे गाँव के लिए ऐसी छोटी आयु में बच्चे को पढ़ने के लिए बाहर भेजना एक नयी बात थी, किन्तु विदुषी माता ने बालक के भविष्य के सामने वात्सल्य प्रेम की अवहेलना की, पड़ौसियों के तिरस्कार को सहा और बच्चे को पढ़ने के लिए भेज ही दिया। लगभग ७ साल तक आपने यहाँ शिक्षा प्राप्त की और सदा अपनी श्रेणी में प्रथम रहे। इतना ही नहीं, व्यायाम से भी आपको प्रेम था, जनता के कार्यों में भी आप हिस्सा लेते थे। यहां की "आर्य बालसभा" व "आर्यकुमार सभा" के भी आप प्राण थे। निबन्ध लिखने व व्याख्यान देने में आपको कई बार पारितोषिक मिले। "शास्त्रार्थ" के समय आप विपक्षी को निरुत्तर कर देते थे। यही कारण था कि आप पाठशाला के अध्यापकों की दृष्टि में अत्यधिक सम्मान के पात्र हो गये थे। आज भी आपको अध्यापक वर्ग प्रेम से याद करता है श्रीयुत लक्ष्मण प्रसाद प्रिंसिपल डी० ए० वी० कालेज देहरादून

आपको खूब प्यार करते थे। तत्कालीन संस्था के हेडमास्टर स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक आपको स्कूल का "चमकदार सितारा" कह कर सम्वोधित करते थे, अध्यापकवर्ग ही नहीं, वल्कि विद्यालय के सहपाठी वर्ग भी आपसे खूब हिले-मिले रहते थे। आप में अहंकार अथवा अभिमान न था। जिससे आप एक वार मिलते वही आपका मित्र हो जाता। धनहीन छात्रों को आप धन से भी सहायता करते थे। आप अन्य छात्रों की तरह इर्ष्यालु नहीं थे, आप दूसरों को हर प्रकार से मदद करने में कोई कमी नहीं रखते थे। इन्हीं सद्गुणों के कारण आपका प्रत्येक छात्र से घनिष्ट सम्वन्ध हो गया था। आपके मित्र अव तक आपको याद करते हैं। इस प्रकार १९१६ में आपने मैट्रिक पास किया।

कालेज-प्रवेश करते समय आपकी आयु १७ वर्ष की थी। अभी आपने साहित्य-निर्माण की तरफ ध्यान नहीं दिया था। मैट्रिक पास करने के बाद ३॥ मास की छुट्टियों में आपने "वढ़ापुर आर्य पुस्तकालय" की नींव डाली और कई पुस्तकें, साप्ताहिक व मासिक पत्र मंगाए और गांवों में पढ़ने की रुचि व शौक पैदा किया। इसके पश्चात् आपने एक क्लव खोला और फुटवाल, कबड्डी आदि 'आउट डोर' तथा कई प्रकार के "इनडोर" खेलों का प्रवन्ध किया। साथ ही आर्य समाज में आपने निवन्ध, शास्त्रार्थ का प्रवन्ध किया। वढ़ापुर में आपने काफी जागृति पैदा कर दी। किन्तु इतने ही से आपको संतोष न हुआ। आपने इसके वाद अपना ध्यान साहित्य-सेवा की ओर बढ़ाया और लेख कहानियाँ व कवितायें लिखना प्रारम्भ किया। पहिले आपने छोटी-छोटी टिप्पणियां आरम्भ की और बाद में आपकी सुन्दर कहानी व कवितायें सब तत्कालीन पत्रों में छपी और पत्रों ने खूब उनकी प्रशंसा भी की। इसी समय की लिखी हुई किताबों में से 'जगतमाया' नामक पुस्तक को आज पाठकों के हाथ में भेजते हैं। इस पुस्तक में एक नवयुवक के हृदयोद्गार कूट-कूट कर भरे हुए हैं। आगरा कालेज उस समय आस-पास के अन्य कालेजों से श्रेष्ठ समझा जाता था। अतः उसी कालेज में आपको प्रविष्ट कराया गया।

यहां अपनी असाधारण योग्यता से आपने कुछ ही महीनों में अपना सिक्का जमा दिया। कालेज के प्रत्येक कार्यों में आप हिस्सा लेने लगे। डिवेट, ड्रामा, मैच हरेक कालेज के सार्वजनिक कार्य में आपका हाथ था। कालेज के प्रत्येक कार्य में अपना समय देते हुए भी आप सदैव अपनी कक्षा में प्रथम रहे। स्मरण शक्ति आपकी इतनी तीव्र थी कि आप जो लेक्चर सुनते थे उसी की भाषा में उस लेक्चर का अधिकांश भाग दुहरा देते थे। कई वार आपको सर सुरेन्द्रनाथ जी बनर्जी, वा० विपिनचन्द्रपाल, मिसेज एनीविसेन्ट, श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा लोकमान्य तिलक के लेक्चर दुहराते हुए सुना गया।

उस समय राजनीति स्कूल व कालेजों से बाहर की वात थी और कोई ऐसी राष्ट्रीय संस्थायें नहीं थी जिनसे नवयुवकों को देशभक्ति की ओर खींचा जा सकता हो। कांग्रेस उस समय Arived chair politicion बूढ़े लोगों के हाथों में थी। आप श्री तिलक के विचारों से सहमत तो थे परन्तु क्रांतिकारियों और देशभक्त वीरों की कथाओं को बड़े प्रेम से पढ़ते थे।

बी० ए० पास करने के बाद आपने प्रयाग विश्व विद्यालय के कालिज से १९२० में एल एल० बी० की डिग्री हासिल की। इस प्रकार आपने अपने विद्यार्थी जीवन को समाप्त किया।

जहाँ आप शिक्षित थे, वहां सुधारवादी भी थे। जिस समय आप स्कूल में पढ़ते ही थे, तव नगीने के एक सज्जन की पुत्री से आपकी सगाई हो चुकी थी, किन्तु आपने इस सम्वन्ध को इसलिए अस्वीकृत कर दिया कि वे शिक्षा समाप्ति से पूर्व विवाह-बन्धन में नहीं जकड़ना चाहते थे। शिक्षा की समाप्ति पर देहली में आपका धूमधाम से विवाह हुआ। आप के श्वसुर श्रीमान् ला० श्यामलाल जी लोहिये देहली के प्रसिद्ध रईस थे। आप धन सम्पन्न होते हुए भी एक धार्मिक पुरुष थे। आपने प्रायः कई धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं को धन से सहायता दी और कई निर्धन विद्यार्थियों को विद्यादान दिया। आपने जब दूसरों

को शिक्षा दी तो स्वयं अपने बच्चों की भी शिक्षाओं में कोई कमी न रखी। आपने अपनी पुत्री श्रीमती चन्द्रवती देवी को काफी शिक्षा दी और शिक्षा के बाद योग्य पति भी ढूंढ़ा। दोनों ओर से आदर्श दाम्पत्य जीवन का एक स्वरूप खड़ा हो गया।

इसके बाद बाबू हरस्वरूप जी ने नगीने में वकालत शुरू की। यहां भी आपकी योग्यता ने चमत्कार दिखाया। कुछ ही महीनों में आप यहां प्रसिद्ध वकीलों में समझे जाने लगे। आपका सुडौल शरीर, प्रेम पूर्ण वार्तालाप, हंसमुख चेहरा, विद्वत्ता पूर्ण जिरह व बहस से स्वयं मुवक्किल आपके पास आते थे। आप हमेशा सत्य का पक्ष लिया करते थे। १ वर्ष तक आपने यहां वकालत की और साथ ही सार्वजनिक कार्यों को भी अच्छी तरह निभाया। स्कूल, समाज, क्लब, सभा तथा अन्य धार्मिक व राजनैतिक कोई भी ऐसा कार्य न था जिसमें उनका परामर्श या प्रबन्ध न हो। यदि आज हम उनको तत्कालीन शिक्षा प्रेमी मि० वाई० सी० चिन्तामणि के स्वागत का प्रबन्ध करते हुए सुनते हैं तो कल भारतीय पहलवान प्रोफेसर राममूर्ति के खेल के प्रबन्ध में संलग्न पाते हैं।

यदि अभी तिलक स्वराज्य फण्ड के लिए चन्दा जमा कर रहे हैं तो कल किसी दूसरी देश-सेवा का काम कर रहे हैं।

सन् १९२१ में महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन के प्रारम्भ होते ही आपने वकालत को लात मार दी और राजनीति के क्षेत्र में कूद पड़े। वकालत का काला चोगा उतारकर देशप्रेम का सफेद खद्दर की पोशाक पहनी और अहिंसा-युद्ध में अग्रसर हुए। असहयोग आंदोलन में आपने खूब देश का काम किया और जागृति फैलाई। परंतु चोरी चोरी के काण्ड के बाद ज्योंही गाँधी जी ने अहिंसा के सारे सत्याग्रह को स्थगित किया, देश के त्यागी नवयुवकों की आशायें आसमान से नीचे गिर पड़ीं। स्वतन्त्रता का सौभाग्य-सूर्य निराशा की काली घटाओं में छिप गया और नवयुवकों के दिल टूट गये। अब पुनः स्वतंत्रता की अग्नि ठंडी पड़ी! लोगों को फिर उठाने की चिन्ता हुई। विद्यार्थी लोग

स्कूल व कालेजों के दरवाजे खटखटाने लगे, नौकरी वालों ने नौकरी ढूंढ़नी शुरू की। वकील लोग वकालतों की शरण लेने लगे। बाबू हरस्वरूपजी आदर्श विचार के आदमी थे, उन्होंने अदालत में वकील बनकर सरकारी कर्मचारियों की ज्यादती देखी थी। अतः निश्चय किया कि वे सरकारी नौकरी में घुसकर स्वयं उन बुराइयों को दूर कर देंगे। सरकारी अफसर का काम देश सेवा करना है न कि गरीबों पर अत्याचार करना। अतः १९२२ में आपने डिप्टी कलेक्टरी की परीक्षा दी और प्रथम पास हुए।

१९२३ में आप जिला सुल्तानपुर में डिप्टी कलेक्टर के पद पर नियुक्त हुए। यहां आकर ही आपके गुणों का विकाश हुआ। आपको अहंकार रहित वार्तालाप तथा पक्षपातहीन न्याय प्रिय था। कुछ ही महीनों में आपकी मिलनसारी व प्रसन्न दिल की इलाके में धाक जम गई। अभियुक्त आपके सामने अपना जुर्म स्वीकार कर लेते और उनके समझाने पर अपना जीवन सुधार लेते, अधिकारी वर्ग भी आपसे प्रसन्न थे वकील व कर्मचारी गण भी श्रद्धा रखते थे। आपका न्याय दयामय और शासन सहानुभूति का होता था। रिश्वत शब्द से आपको घृणा थी। उच्च अफसर होते हुए भी आपने सेवा का जो आदर्श सामने रखा था वह पूरा करके दिखा दिया।

"Lives of Greatmen all remind us, we can make our lives, and departing. Leave behind us, footprints on the sand of time."

जिस व्यक्ति का जीवन, परोपकार, सुधार व सेवा में व्यतीत हुआ हो और जिसके जीवन की एक-एक घटना से हमें शिक्षा मिलती हो और जिसने परमार्थ के आगे स्वार्थ को ठुकरा दिया हो, उस महापुरुष की मृत्यु भी परोपकारमय होती है। शरीर के जर्जरित होने पर हरेक को अनिच्छा होने पर भी मरना ही पड़ता है, परन्तु ऐसे बहादुर कम होते हैं जो मृत्यु को सामने देखकर हंस-हंस कर उसको गले लगावें। स्वयं मरकर दूसरों को जिलाना, अपने प्राणों की आहुति देकर दूसरों की रक्षा करना, ऐसे कार्य करने वाले बहुत कम आदमी संसार में होते हैं।

भूमिका

हिन्दी साहित्य की हीन दशा को देख कर किस हिन्दी के प्रेमी पाठक का हृदय विदीर्ण न होता होगा। भारत की राष्ट्रभाषा बनने के योग्य हिन्दी भाषा का साहित्य इतना खाली पड़ा हो और हिन्दी के समर्थ लेखक अपनी शक्तियाँ उसकी उन्नति के बदले अवनति में प्रयोग करें तो भारत की भाषा और भारतवासियों का दुर्भाग्य नहीं तो क्या है। हमने माना कि हिन्दी के अब भी बड़े-बड़े लेखक उपस्थित हैं जो हिन्दी-साहित्योन्नति में मन वचन कर्म से दृढ़ता पूर्वक लग रहे हैं। और जो वास्तव में प्रशंसायोग्य हैं, परन्तु हिन्दी लेखकों में से एक बड़ी संख्या धन लोभ से अथवा और किसी कारण से अश्लील उपन्यास लिख लिख कर निज मातृ भाषा को कलंक लगा रही है। अधिकांश उपन्यास जो प्रेम के अश्लील किस्सों से भरे पड़े हैं और जो पाठकों के हृदय में कदापि कोई शुभ कल्पना उत्पन्न नहीं कर सकते, अच्छा साहित्य बनाने में सर्वथा असमर्थ हैं। बहुधा विद्वान् लोग अपनी पुस्तकों की भाषा इतनी क्लिष्ट कर देते हैं कि उसे या तो लेखक या लेखक सदृश और विद्वान् ही समझ सकते हैं। विद्वान् लोग पुस्तकें साधारण पब्लिक के लिये लिखा करते हैं, न कि अपने सदृश विद्वानों के लिये। अतः मेरे विचार में भाषा सरल परन्तु भावपूर्ण होनी चाहिये। और जहाँ तक हो अपनी भाषा के शब्द रहते अन्य भाषाओं के शब्द न लेने चाहियें। हां यदि कोई बोलचाल में अधिक आया हुआ शब्द दूसरी भाषा का भी आ जाय तो कोई विशेष हानि नहीं।

इस तरह के लिखे हुए धार्मिक उपन्यास निःसन्देह सर्वसाधारण के लिये उपयोगी हो सकते हैं और अच्छा साहित्य बना सकते हैं।

प्रिय पाठक गण !

इन्हीं विचारों को लेकर मैंने इस उपन्यास के लिखने को लेखनी उठाई है। जिस घटना का उल्लेख इस छोटे से उपन्यास में है उससे आपको दो शिक्षाएँ मिलेंगी—एक तो सत्संग की, दूसरी यह कि "मनुष्य को कभी हताश न होना चाहिये वह जब चाहे सुधर सकता है।" मैं स्वयं विद्यार्थी हूं और यह उपन्यास विशेषतया नवयुवकों के लिये ही लिखा गया है। लड़के धर्म कर्म की नीरस वातों को उत्कण्ठा से नहीं सुना अथवा पढ़ा करते अतएव मैंने ऊपर लिखित दो शिक्षाओं को रोचक बनाने के लिये उनके ऊपर यह उपन्यास लिखा है। मेरी परमात्मा से प्रार्थना है कि वह मेरे मनोरथ को पूर्ण करने में सहायता करें।

अन्त में जगत् पिता परमात्मा से सभक्ति प्रार्थना है कि वह भारत देश के सत्पुत्र नवयुवकों में मातृभाषा प्रेम उत्पन्न करें और उन में नवजीवन का संचार करें।

शुभम्

नवयुवकों का शुभ-चिन्तक—
हरस्वरूप गुप्त

जगतमाया

प्रथम भाग

प्रथम परिच्छेद

हाय हाय, मरे रे, हे ईश्वर, ओ३म् या अल्लाह या खुदा, अरी मौत तेरा बुरा हो यह आवाजें एक निर्जन भयंकर वन में एक बड़े खड़-खड़ाहट और गड़गड़ाहट के शब्द के साथ सुनाई दे रही हैं।

ग्रीष्म ऋतु है, कई दिवस से बड़ी कड़ाकेदार धूप पड़ रही है, सूर्य्य देवता भी अपनी गरम गरम किरणों से पृथ्वी निवासियों को खूब ही तपा रहे हैं। सब लोग सूर्य्य को इतनी गर्मी के लिये गालियाँ दे रहे हैं। यदि इतनी गर्मी न हो तो मनुष्यों की जीवनाधार खेती को हरी करने वाली श्रावण की वर्षा कहां से आवे—यह न विचार कर स्वार्थी मनुष्य सूर्य्य को धन्यवाद न देकर गालियां दे रहे हैं। यह है जगतमाया, संसार में अपने उपकारियों का उपकार जरा कम माना करते हैं। प्रातःकाल देहली से एक गाड़ी चली, रेलवे ट्रेन यात्रियों से खचाखच भरी है और इतनी भीड़ है कि तिल रखने को भी स्थान नहीं मिलता। जिस समय गाड़ी गाजियाबाद से धुवें के बादल उड़ाती चली तो ग्यारह बज चुके थे। जितनी तेज रेल की चाल थी उतनी ही तेज धूप थी। किसी स्टेशन पर रुकने के लिये गाड़ी की चाल धीमी पड़ गई और दैवयोग से धूप भी ढीली पड़ गई। बादल के छोटे-छोटे टुकड़े इधर-उधर से उड़कर एकत्रित हो गये और सूर्य्य के ऊपर एक श्वेत चादर सी ढक दी। परन्तु सूर्य्य की किरणें बादलों में से छन छन कर पृथ्वी पर पड़ती ही रहीं। गाड़ी स्टेशन पर रुक गई और अकस्मात् पश्चिम से एक घनघोर घटा उठी। बात की बात में इस काली घटा ने समुद्रों की लहरों के

समान बढ़ते हुये सूर्य्य नारायण को चारों ओर से घेर लिया। सूर्य्य इस घटा से लड़कर विजय न प्राप्त कर सका और पूर्ण अन्धकार हो गया। गाड़ी रुकी कि धूप भी बन्द हो गई। गाड़ी के पहियों की घड़घड़ाहट हुई और रेल ने फिर चलना आरम्भ कर दिया। बादलों की घड़घड़ाहट तो अवश्य होती रही परन्तु धूप फिर न निकली और अन्धकार बढ़ता ही गया। ठीक है आपत्ति के समय कौन किसका साथ देता है। अब इस रेल व इसके यात्रियों पर आपत्ति का पहाड़ टूटने वाला है। अतएव सूर्य्य ने भी सहायता से मुख फेर लिया और धूप ने साथ छोड़ दिया। अन्धेरा ऐसा हुआ कि हाथ को हाथ न सूझता था और ऐसा प्रतीत होता था कि अन्धेरा फाड़ फाड़ कर डंके की चोट से कह रहा है कि देखो अब अन्धेरा हुआ ही चाहता है। देखिये अधिक चिन्ता न कीजिये ईश्वर सब का स्वामी है। शीतल वायु मन्द मन्द मुसकान से बहनी आरम्भ हुई और हमारे यात्री आनन्द से बैठे बैठे ऊँघने लगे।

हा! हा!! हाय!!! सर्वनाश हुआ. यह किसे ज्ञात था कि दूसरी ओर से भी एक ट्रेन आ रही है। आनन्द में एक दम बाधा पड़ी और दोनों गाड़ियां टकरा गईं। दूसरी गाड़ी का इञ्जिन चकनाचूर हो गया और वह गाड़ी धक्के से कई फरलांग पीछे हट कर उलट गई। पहली गाड़ी का इञ्जिन अधिक न टूटा और वह गाड़ी भी पीछे लौटने लगी, धक्के से किसी यांत्री का सिर किसी यात्री से टकराया, किसी का गाड़ी के लोहे के डण्डे से टकरा कर फट गया, कोई ऊपर सोने वाला मुसाफिर लुढ़क कर नीचे आ पड़ा और अपनी गर्दन तोड़ बैठा। किसी का सिर टूटा, किसी का हाथ, किसी की टांग, किसी की गर्दन। सारे में हाहाकार मच गया। बहुत से साहसी वीर कूद कूद कर प्राण बचाने लगे। ऐसा करने में बहुत से अंग तोड़ बैठे। इन्हीं अंग-भंग यात्रियों के मुख से निकले हुए वह टूटे फूटे शब्द हैं। जो हम इस बयान के आरम्भ में लिख आये हैं।

ऐसे समय में हम एक इन्टर क्लास से एक नवयुवक को कूदते देखते

हैं वह व्यक्ति कूद कर और यात्रियों की तरह भागा नहीं वरन् खड़ा होकर गाड़ी की ओर मुख करके किसी को पुकारने लगा।

सच्चिदानन्द ! ओ सच्चिदानन्द ! सच्च ! जब किसी ने अन्दर से उत्तर न दिया तो वह युवा फिर उस दर्जे में घुस गया और थोड़ी देर में जब फिर आगे बढ़ना आरम्भ करने के लिये बढ़ा तो गाड़ी तनिक धीमे धीमे चलने लगी थी, वह युवा एक और नवयुवक की लाश लादे हुये कूदा और अपने शरीर की पुष्टता के कारण कुशलपूर्वक लाश को लिए हुए एक झाड़ी में घुस गया। इस वीर ने दूसरे युवा की नाड़ी पर हाथ रक्खा तो नब्ज़ को ठीक चलते हुये पाया। इससे उसने परिणाम निकाला कि उसका साथी धक्के के कारण केवल मूर्छित हो गया है। वह निश्चिन्त होकर उसकी मूर्छा जगने की राह देखने लगा।

ईश्वर की माया कि इस समय वर्षा होनी आरम्भ हो गई। मानो कि इन्द्र देवता भी दुःखी यात्रियों की दशा पर सहानुभूति प्रगट करने के लिये अश्रुधारा वर्षा रहे हैं। मुख पर बूंद पड़ते ही सच्चिदानन्द (इस मूर्छित युवक का नाम था) की मूर्छा जाती रही और वह बैंठा हो गया। इसने अपने मुख पर हाथ फेर अपने रक्षक से पूछा :—

"कैलाश चन्द्र तुमने मेरी प्राणरक्षा की" ?

पाठक जान गये कि इस वीर का शुभ नाम कैलाश चन्द्र है।

उसने अपने साथी की बात सुनकर उत्तर में गद्‌गद स्वर होकर कहा।

कैलाश०—हां परमात्मा ने हम दोनों मित्रों की प्राणरक्षा की, अच्छा और बातचीत से पूर्व यह बतलाओ कि तुमने कोई गहरी चोट तो नहीं खाई ?

सच्चिदानन्द—और तो कहीं नहीं, एक दाहिने टखने में कुछ चोट आई है।

कैलाश०—कोई चिन्ता नहीं, परन्तु अब यहां से शीघ्र चल देना चाहिये।

सच्चिदा०—तो फिर देर काहे की।

कैलाश०—मेरा विचार है शायद तुम चल न सको।

सच्चिदा०—नहीं, नहीं चलो भरसक चलूंहीगा।

सच्चिदानन्द की अन्तिम बात सुन कर कैलाशचन्द्र उठ खड़ा हुआ और उसका सहारा लेकर सच्चिदानन्द भी खड़ा हो गया और दोनों मित्रों ने धीरे-धीरे जिधर से आये थे रेल की पटड़ी-पटड़ी चलना आरम्भ किया। वर्षा ने अब और भी तेजी पकड़ी जहाँ तहां जल ही जल दीखने लगा। अब काले बादलों को उद्दंडता सूझी और उन्होंने दुःखी यात्रियों को लक्ष्य बना कर पाषाण मारने आरम्भ किये अथवा पड़ापड़ ओले पड़ने लगे।

हमारे दोनों वीर हताश न हुए और चले ही गये।

द्वितीय परिच्छेद

पिछली घटना के एक दिन पश्चात् हम गाजियाबाद का स्टेशन यात्रियों से भरा हुआ देखते हैं। परन्तु हमारी दृष्टि यहां नहीं रुकती क्योंकि हम किसी यात्री को नहीं पहचानते। वह देखिए बाहर तार के खम्बे के नीचे वह दो युवक कौन बैठे हैं! चलिए पास चलें शायद पहिचान सकें। अहा!! यह तो सच्चिदानन्द और कैलाशचन्द्र हैं और इनमें निम्नलिखित बातचीत हो रही है :—

सच्चिदा०—मित्र तुमने बड़ा साहस किया।

कैलाश०—यह तो प्रारब्ध की बात है नहीं तो मुझमें कहां सामर्थ्य था कि अपने आपको और तुमको मृत्यु के भयंकर गाल से बचाता।

सच्चिदा०—देखो तो बादल अब तक कैसे मंडरा रहे हैं!

कैलाश०—अच्छा अब क्या करना चाहिए!

सच्चिदा०—घर चलना चाहिए और क्या करना चाहिए।

कैलाश०—(जेब टटोल कर) मेरे पास तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं है, घर कैसे पहुंचेंगे।

सच्चिदा०—(अपनी जेब में देखकर) मेरे पास अढ़ाई रुपये हैं।

कैलाश०—यह तो केवल एक टिकट के लिए पर्याप्त होंगे।

सच्चिदा०—तो और कोई यत्न करना चाहिए।

कैलाश०—तुम तो घर जा सकते हो। जब तुम्हारे पास धन है। तो क्यों अपनी पढ़ाई को हानि पहुंचाते हो।

सच्चिदा०—(कुछ बेचैन होकर) वाह, तुमने मेरी प्राण रक्षा की और मैं तुम्हारा साथ छोड़ कर चला जाऊं। भला यह कब सम्भव है। सच्चिदानन्द इतना कृतघ्न नहीं है।

कैलाश०—(कुछ लज्जित होकर) तुमने मेरा इससे पूर्व बड़ा उपकार किया है। तुमने मेरी ऐसी-ऐसी बुरी घड़ियों में सहायता की है कि मैं मृत्यु पर्य्यन्त उऋण हो नहीं सकता। यह तो एक साधारण सेवा थी जो मुझसे बन पड़ी। इसके लिए तुमको कृतज्ञ न होना चाहिए।

सच्चिदा०—अच्छा यह बातें फिर होंगी, पहिले देहरादून पहुंचने का प्रबन्ध करना चाहिए (अपनी तर्जनी की ओर देखकर जिस में एक सुवर्ण की अंगूठी चमक रही थी) हां, क्या समय पर याद आया (अंगुली दिखाकर) यह अंगूठी कब काम आएगी। यद्यपि मैं इस अंगूठी को प्राणों से भी अधिक प्यार करता हूं परन्तु अब इसे बेचने में तनिक भी संकोच न करूंगा।

इस वार्तालाप के पश्चात् दोनों उठ कर नगर में पहुंचे और १००) की हीरा जटित अंगूठी को शीघ्रता के कारण १०) में बेच स्टेशन को लौट आये। उन्होंने देहरादून का टिकट मोल ले लिया और गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे।

तृतीय परिच्छेद

अब हम उचित समझते हैं कि अपने पाठकों को अपने उपन्यास के

पात्रों का परिचय करावें और अपने मतलब की ओर झुकें।

सच्चिदानन्द का नाम सच्चिदानन्द स्वरूप गुप्त था और इसी नाम को वह लिखने में प्रयोग करता था। परन्तु उसके साथी उसे सच्चिदानन्द ही कहा करते थे। सच्चिदानन्द एक साधारण वैश्य पुत्र था। घर का यदि वह धनी नहीं था तो निर्धन भी नहीं कहा जा सकता। उसका पिता वणिज व्यापार करता था और लगभग ३००) मासिक कमा लेता था। सच्चिदानन्द का पिता यद्यपि स्वयं निरक्षर था परन्तु वह अपने पुत्र की पढ़ाई का प्रवन्ध वड़ी सावधानी से करता था और सच्चिदानन्द वड़ा तीव्र वुद्धि था। जिस समय का वर्णन हम कर रहे हैं, सच्चिदानन्द की अवस्था कोई १७ वर्ष की होगी। कद लम्वा और चेहरा सुन्दर था और उसके विशाल मस्तक से उसकी होनहारी टपकती थी। सच्चिदानन्द अपने दर्जे में सदैव प्रथम रहा करता था और कई पारितोषिक पा चुका था। जितनी तीव्र सच्चिदानन्द की वुद्धि थी उतना ही उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट न था। और उसकी शारीरिक दुर्वलता पैतृक सी थी। परन्तु वह देखने में इतना दुर्वल नहीं जंचता था। संक्षेप यह कि वह 'वनिये पतली दाल के खाना पिलपिली प्रसाद' वाली कहावत को चरियार्थ करता था। कैलाश चन्द्र भी एक वैश्य का पुत्र था। उसका पिता एक बड़ा भारी सेठ था। इस समय उसकी आयु भी लगभग १७ वर्ष की थी। लम्बाई सच्चिदानन्द से कुछ ही कम थी। रंग गोरा और मुख अति सुन्दर था। जितना उसका पिता उसकी पढ़ाई का ध्यान रखता था उतना ध्यान कैलाश को नहीं था। इस पर भी वह कक्षा में भली-भांति चल लेता था। कैलाशचन्द्र शरीर का वड़ा हृष्ट-पुष्ट था और व्यायाम का वड़ा प्रेमी था। खेल-कूद का भी उसको वड़ा अभ्यास था। और वास्तव में इन्हीं वातों में वह अपना बहुमूल्य समय नष्ट किया करता था।

परन्तु सच्चिदानन्द और कैलाशचन्द्र के स्वभाव में पृथ्वी-आकाश का अन्तर था। सच्चिदानन्द स्वभाव से ही धार्मिक और विचारशील

था और सदा सत्पुरुषों की संगति किया करता था। कैलाशचन्द्र यद्यपि अभी तक दुर्व्यसनों की भीषण दल-दल में नहीं फंसा था तथापि उसको धर्म्मादि से अरुचि थी। प्रायः कहा करता था 'अरे क्या रक्खा है इन बातों में धर्म के ढकोसले तो पण्डितों के दिल बहलाने को हैं।' इस धर्म से अरुचि का परिणाम कैलाश को अच्छा नहीं मिला, जैसा हमारे पाठक आगे चलकर देखेंगे।

सच्चिदानन्द कैलाशचन्द्र को सदैव धर्म पथ पर लाने का उद्योग किया करता था और अपने उपदेशों द्वारा उसको कुसंगति से बचाने का उपाय किया करता था। कैलाशचन्द्र अपने मित्र के इस शुभ यत्न से प्रसन्न न था और सच्चिदानन्द की समय-समय पर ताड़ना उसके हृदय में कंटकवत् चुभा करती थी। उस रेल वाली घटना के पश्चात्, जब कैलाशचन्द्र ने अलौकिक वीरता के साथ उसकी प्राण रक्षा की थी, तब सच्चिदानन्द ने प्रण कर लिया था कि मैं जन्म भर जितनी सहायता व सेवा कर सकूंगा करूंगा। इसी कारण सच्चिदानन्द कैलाशचन्द्र के बुरा मानने पर भी उसको शिक्षा करता ही रहता था।

हमने इस उपन्यास के दो मुख्य पात्रों का परिचय विस्तार-पूर्वक कर दिया है और अन्य पात्रों का वर्णन व परिचय समय-समय पर होता रहेगा। पाठकगण ! अभी तक तो इस उपन्यास का सच पूछिए तो आरंभ भी नहीं हुआ। जो कुछ हमने अब तक लिखा है वह तो इसकी विचित्र घटनाओं के निमित्त केवल भूमिका मात्र है। आप अब पुस्तक को रुचि से पढ़िये और यदि कहीं कुछ नीरस प्राप्ति हो तो उकता कर छोड़िये नहीं वरन् शांति के साथ इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ कर लेखक को कृतार्थ कीजिए।

चतुर्थ परिच्छेद

जून के महीने में स्कूल ग्रीष्मऋतु के कारण बन्द है। हम अपने पाठकों को उस घाटी में ले चलते हैं जो शिवालिक व हिमालय के बीच शोभायमान है। यह समस्त घाटी अपनी हरियावली के लिए विख्यात है और हरे-भरे वृक्ष से लदे हुए सुन्दर पर्वत देखते ही मन को हर लेते हैं। यह घाटी भारत के उत्तराखण्ड में सागर की सतह से अढ़ाई सहस्र फीट ऊंचाई पर विराजमान है। इसकी ऊंचाई के कारण यह घाटी अधिक ठण्डी है। चारों ओर दृष्टि दौड़ाने से प्रतीत होता है मानो परमात्मा ने अपने प्यारे पर्वतों को शीत से बचाने के लिए मुलायम हरे-हरे मनोहर वृक्षों रूपी लिहाफों और कम्बलों से सुरक्षित कर रक्खा है।

इसी मनोहारिणी घाटी में हमारे पूर्व परिचित मित्रों का निवास-स्थान देहरादून बसा हुआ है। देहरादून एक देखने योग्य स्थान है। स्टेशन नगर से दक्षिण में बना हुआ है और स्टेशन से चलकर बाजार में होते हुये एक चौड़ा क्रीड़ा स्थान दायें हाथ पर दिखाई पड़ता है जो वहाँ परेड का मैदान कहलाता है। इस परेड के बीच में एक टूटा-फूटा चबूतरा है जहां बाबू लोग सायंकाल को बैठकर शीतल वायु का आनन्द लेते हैं। इस समय कोई सायंकाल के साढ़े छः बजे हैं। सूर्य देवता सारी दोपहर भर पृथ्वी को तपा कर भी जब वहां की हरियाली का कुछ न बिगाड़ सके तो लज्जित होकर रक्तवर्ण चादर ओढ़ कर मनुष्यों की आँखों से ओझल हुआ चाहते हैं और यहां से परास्त हो अपना क्रोध पाताल वालों पर निकालने को उत्सुक हो रहे हैं। और उसी लज्जा-मिश्रित क्रोध से उनका वर्ण लोहित हो गया है।

ऐसे समय में हम एक नवयुवक को परेड के मध्य चबूतरे पर बैठा चिन्ता में निमग्न पाते हैं। यह युवा पूर्वाभिमुख बैठा है और कभी-कभी चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर पुनः पृथ्वी की ओर देखने लगता है। इतने में हम एक युवा को चक्कर काट कर पश्चिम की ओर से आता देखते

हैं। युवक दवे पैर पीछे से आकर उस युवक के पास खड़ा हो गया और धीरे से अपने दोनों करों से उसकी आँख वन्द कर ली।

त्रिलोक०—हंस कर उसके पास वैठ गया और बोला...

त्रिलोक०—मित्र जव हम अपने हाथ काटकर छोटे कर लेंगे तव देखें तुम कैसे पहिचानते हो।

युवक०—अरे वावू प्रतापसिंह के सिर में तुमसे कहीं अधिक बुद्धि है। तव हम तुम्हारे कटे हुए हाथों से पहचान लिया करेंगे।

त्रिलोक०—खैर देखा जायेगा। अच्छा यह तो वताओ कि अभी तक कोई आया क्यों नहीं ?

प्रताप०—आप भी भले प्रश्न करते हैं, भला इसका उत्तर मैं आपसे अधिक क्या दे सकता हूँ ?

यह वार्तालाप हो ही रहा था कि उत्तर की ओर से दो लड़के आते दिखाई पड़े। उनमें से एक का नाम तो पाठकगण जानते हैं—कैलाशचन्द्र है। दूसरे का नाम विन्ध्येश्वरी प्रसाद है। यह कैलाशचन्द्र के सहपाठी और मित्र हैं। वह दोनों आकर भी त्रिलोकचन्द्र इत्यादि के पास बैठ गये और बातचीत करने लगे।

कैलाश०—आज क्या इच्छा है !

त्रिलोक०—भाई आज सात वजे से एक जगह एक बड़ी वढ़िया वेश्या का नाच है, समय आ ही गया है, चलो वहाँ चलें, अच्छा स्थान दिखला देना मेरा काम है।

प्रताप०—वस, देर काहे की है अव चल ही दो।

विन्ध्येश्वरी०—शीघ्र चलो, इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है ! इतना कहकर सब कैलाशचन्द्र की ओर देखने लगे।

कैलाश०—(कुछ उदास होकर) नहीं मित्रो वेश्या का नाच तो देखना उचित नहीं।

त्रिलोकी०—अरे यार शायद तुम भी सच्चिदानन्द की संगति से उसकी नाईं बुद्धू भाई बनना चाहते हो। तुम किस प्रकार के नवयुवक हो।

यही अवस्था आनन्द लूटने की है। फिर जब गृहस्थ का भार ऊपर पड़ जाता है तो फिर उतनी निश्चिन्तता कहाँ होती है और जो इस आयु में भी आनंद नहीं लूटता, वह निःसन्देह मूर्ख है। यह धर्म कर्म की बातें घर रख आया करो। अब विलम्ब न करो और निःसंकोच होकर मंगला-मुखी के दर्शन करने चलो और चक्षुओं का फल प्राप्त करो।

कैलाश०—मैं अब तक इस व्यसन से बचा हूं, मुझे भी क्यों व्यर्थ फंसाते हो। मुझे आज्ञा दो मैं अपने आराम* में जाकर मन बहलाऊंगा।

त्रिलोकी०—(कुछ उदास होकर) देखना कहीं तुम्हीं स्वर्ग में न चले जाना। ऐसी बातें करते हो मानो अभी काशी से संस्कृत पढ़ कर आये हो। भाई इसमें व्यसन ही क्या है यह चक्षुओं का आनन्द है। यदि धर्म की बात लेते हो तो राजा इन्द्र के अखाड़े में भी सैकड़ों वेश्यायें हैं और शास्त्रों में इसका नाम मंगलामुखी लिखा है और फिर आराम का आनन्द तो और दिन भी ले सकते हो, कहीं वो भागा तो जाता ही नहीं। भला ऐसी बढ़िया वेश्या प्रति दिवस थोड़े ही आती हैं। यह तो कभी-कभी सौभाग्यवश चली आती हैं।

कैलाश०—अच्छा चलो तुम्हारे आग्रह पर चला चलता हूँ।

विध्येश्वरी—अच्छा अब सर्व सम्मति है तो श्रीगणेश मैं करता हूँ। (यह कहकर विध्वेश्वरी प्रसाद घुटने पर हाथ टेक कर उठ खड़ा हुआ और उसका अनुकरण करके शेष सब भी उठ खड़े हुए। यह मंडली चली ही थी कि पीछे से किसी ने कहा—)।

मेरी सम्मति तो ली ही नहीं गई। सब ने चौंक कर और घूम कर देखा तो सच्चिदानन्द पर दृष्टि पड़ी जो खड़ा मुस्करा रहा था। और बड़ी देर से खड़े-खड़े इनकी बातें सुन रहा था।

सच्चिदानन्द भी यद्यपि इन लोगों का सहपाठी था। परन्तु वह साधारण विद्यार्थी न था, उसके विचार बड़े उच्च थे। इसी कारण

*आराम=बाग

कैलाशचन्द्र के साथी मन में चिढ़ कर भी सच्चिदानन्द के सामने कैलाशचन्द्र को न बुला सके। और स्वयं भी यह कहते हुए उत्तर को चले गए कि वास्तव में वहां नहीं जाना चाहिए। हम लोग भी कार्य्यवश अपने-अपने गृहों को जाते हैं।

सच्चिदा०—क्यों मित्र कहां जा रहे थे ?

कैलाश०—तुमने तो सुन ही लिया होगा और साथ में यह भी सुना होगा कि मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध जा रहा था।

सच्चिदा०—आश्चर्य हैं ! मनुष्य जब अपनी इच्छा के विरुद्ध धर्म-कार्य में प्रवृत्त होने से संकोच करते हैं तो तुम इस अधर्म कार्य के लिए कैसे उद्यत हो गए ! यदि मैं यहां न आ निकलता तो तुम चल ही दिए थे।

कैलाश०—ऐसे ही लड़कों के साथ जाने लगा था। (बात टाल कर) तुम यहां कैसे आ निकले ?

सच्चिदा०—मैं एक बड़े आवश्यक कार्य के लिए समाज मन्दिर जा रहा हूं। अच्छा मुझे देर होती है मैं तो जाता हूँ तुम आनन्द करो समझो तो इस समय करनपुर चले जाया करो वहां दिल बहल जाया करेगा। (इतना कहकर सच्चिदानन्द फुर्ती से चला गया) कैलाशचन्द्र ने फिर कर देखा तो अपने साथियों को अपनी प्रतीक्षा में पैरेड के उत्तर के कोने खड़े पाया। इस समय सूरज छिप चुका था और गोधूली का समय हो गया था।

पंचम परिच्छेद

जगत माया विचित्र है ! यह स्वाभाविक बात है कि धर्म से पाप का आकर्षण अधिक होता है। लाभ वाली बातों से हानिकारक बातों का आकर्षण अधिक होता है। दुष्कर्म से सत्कर्म का आकर्षण कम है। बच्चों को पढ़ने को कहो कुप्पा हो जायेंगे, खेलने को कहो कमलवत् खिल कर प्रफुल्लित हो जायेंगे। नवयुवकों को दही, खटाई, मिर्च और गर्म मसाले

की हानिकारक चाट (खोमचा) सतोगुणी खीर से अधिक प्रिय है। धार्मिक व्याख्यान सुनकर मनोरंजन नहीं होता। हां, थियेटर की अश्लील रागनियाँ अवश्य रुचिकर होती हैं। शिक्षाप्रद उपन्यास अश्लील और व्यभिचारपूर्ण उपन्यासों के सन्मुख तुच्छ समझे जाते हैं। धन्य है जगत माया तुझे धन्य है ! तेरी अनुपम माया की बलिहारी है !

जब कैलाशचन्द्र ने घूम कर अपने साथियों को खड़े पाया तो वह उनकी ओर धीरे-धीरे चला और फिर पीछे को भी देखता जाता था। उसको अकेला देख कर उसकी मित्र मंडली आगे बढ़ आई जैसे चांद को निहार समुद्र की लहरें आगे को बढ़ती हैं। आगे बढ़ कर त्रिलोकचन्द्र ने पूछा 'कहो चलोगे' कैलाशचन्द ने उत्तर दिया 'कुछ देर यहां ठहरो'।

वह चौकड़ी वही टहलने लगी और इन में निम्निलिखित रहस्यपूर्ण वार्तालाप होने लगा—

त्रिलोकचन्द्र—भाई सच्चिदानन्द तो विचित्र मनुष्य है।

विन्ध्येश्वरी—मुझे तो पूर्ण आशा है कि उसको शीघ्र ही आगरे के पागलखाने की हवा खानी होगी।

प्रताप०—(कैलाश से) आप की सम्मति क्या है ?

कैलाश०—(कुछ सोचकर) भाई सत्य तो यह है कि मैं उस को अब तक बड़ा धर्मात्मा आदमी मानता रहा हूं और अब भी उसको बड़ा अच्छा मानता हूं। परन्तु कुछ दिनों से मुझे उसकी समय-कुसमय की ताड़ना बहुत चुभती है। मैं नहीं जानता कि यह मेरी आत्मा की दुर्बलता के कारण है अथवा इसके विपरीत ! क्योंकि मुझ में अभी तक उसको दोषी ठहराने का साहस नहीं हुआ है।

कैलाशचन्द्र एक अमीर का लड़का है। उसके खुशामदी दोस्त प्रतापसिंह, त्रिलोकचन्द्र और विन्ध्येश्वरी प्रसाद नाना प्रकार के दुर्व्यसनों में ग्रस्त हैं। और सदा कैलाश को दुर्गुणों की ओर आकर्षित करते रहते हैं। क्योंकि उनको कैलाशचन्द्र से अपने दुर्व्यसन-सिद्धार्थ धन प्राप्ति

की अधिक आशा है। परन्तु सच्चिदानन्द के सदुपदेशों द्वारा अभी तक कैलाश इनके चंगुल में नहीं फंसा है। त्रिलोकचन्द्र इत्यादि जानते थे कि कैलाशचन्द्र और सच्चिदानन्द में गाढ़ी मित्रता है इसलिए उनका साहस न पड़ता था कि सच्चिदानन्द के विरुद्ध जिह्वा निकालें। मन मन में थे लोग सच्चिदानन्द से वेहद कुढ़ते थे क्योंकि इसके कारण उनके मनोरथ सफल न होते थे। इसलिए वे सदा अवसर की ताक में रहते थे कि कब कैलाशचन्द्र की दृष्टि पलटे और उनका दांव लगे।

पाठक गण! इस अवसर को इन लोगों ने शुभ समझा और अपना काम निकालने की चिन्ता करने लगे। जगतमाया के अनुसार उनका तीर चल गया। त्रिलोकचन्द ने, जो उन सब में चतुर था, इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया :—

त्रिलोक०—हां धार्मिक तो अवश्य है। परन्तु ऐसा भी क्या धर्म जो जीवन का आनन्द भी न लूटा जाय। और भाई मेरी सम्मति में धर्म और वेद शास्त्रों के जंजाल वृद्धावस्था के लिए हैं।

प्रताप०—अजी भला कोई वात भी है! मेरी समझ में तो सिवा सच्चिदानन्द के और कोई भी विद्यार्थी ऐसा नहीं जो वेश्यानृत्य और थियेटर इत्यादि न देखता हो, तो क्या वे सब मूर्ख और वह ही केवल बुद्धिमान् है?

विन्ध्येश्वरी०—अच्छा जरा विचारिये कि हमारे भाई साहब कैलाशचन्द्र ने तो उसकी मौत से रक्षा की और वह इन को समय कुसमय टोक कर अप्रसन्न करता है। न वह इनका गुरु है न वाप न कोई बुजुर्ग है। यह भी एन्ट्रेंस के विद्यार्थी हैं वह भी। फिर भला उसको क्या अधिकार है अथवा क्या आवश्यकता पड़ी है जो इनको बड़े बूढ़ों की नांई उपदेश करता फिरे!

त्रिलोक०—हां जी! और आश्चर्य है कि भाई साहब ने भी उसे मुंह लगा रक्खा है। वरन् जैसे इन्होंने उसकी प्राण रक्षा की थी उसे चाहिये था कि इनकी जूतियां चाटा करता। मुझे तो प्रतीत होता है कि

वह इनको धनिक समझकर इन को ठगना चाहता है।

प्रताप०—चाहे बाबू साहब स्वयं वेश्या के जाते हों परन्तु साधु बनने के लिए दूसरों को उपदेश करते फिरते हैं।

त्रिलोक०—मुझसे इन्द्रसेन कह रहा था कि जब सच्चिदानन्द आगरे गया था तो वहां उसके घर के समीप ही किनारी बाजार में घर किराये पर लिया था और प्रायः वेश्याओं का गाना सुनने जाया करता था। यदि ऐसा है तब तो सच्चिदानन्द बड़ा ही दुष्ट है और व्यर्थ ही साधु महात्मा बनना चाहता है।

प्रताप०—आश्चर्य ही क्या है युवा अवस्था ही तो है। बहुत सम्भव है कि इन्द्रसेन का कहना सच हो (कैलाश से) क्यों भाई साहब !

पाठक गण ! कैलाशचन्द अब तक मौन धारण किये इनकी बातें सुन रहा था और किसी गहरी चिन्ता में डूबा हुआ था। सच्चिदानन्द ने उसके ऊपर ऐसे ऐसे अहसान किये थे कि उसका रोम रोम कृतज्ञता से बंधा हुआ था। अतएव उसका साहस नहीं पड़ता था कि सच्चिदानन्द के विरुद्ध कुछ मुख से निकाले। वास्तव में कैलाशचन्द्र का हृदय इस समय तक निर्बल था परन्तु वह किसी धर्म्म के रंग में रंगा हुआ नहीं था इसी कारण उस पर नवीन रंग शीघ्र चढ़ जाता था। अभी तक उसके हृदय में सच्चिदानन्द की भक्ति का बीज नाश नहीं हुआ था और शायद कुछ समय तक इनकी उलझने वाली बातें सुनकर उसके विचार पलट जाते। परन्तु क्यों भाई साहब के प्रश्न ने उसे चुप न रहने दिया। यह सच्चिदानन्द को बड़ा सच्चा समझता था इसलिये इसके मुख से यह चौंकाने वाले शब्द निकल पड़े।

कैलाश०—(तड़क कर) यह सर्वथा असम्भव है। चाहे सूर्य्य पश्चिम से उदय होने लग जाय, चाहे चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करना छोड़दे, मेघ मंडल जल के बदले अग्नि वर्षाने लग जाय, चाहे पर्वतों में कमल खिलने लगें, चाहे गंगा उलटी बहने लगे और समुद्र से खारी जल लेकर मान सरोवर में एकत्रित करने लगे और चाहे रेत में

से तेल निकलने लगे परन्तु सच्चिदानन्द का वेश्यागान सुनने जाना सम्भव नहीं हो सकता। या तो इन्द्रसेन ने तुम से झूठ बोला अथवा तुम मिथ्या भाषण करते हो। रहा वेश्या का नाच, उसके विषय में मैं कुछ नहीं कहता।

कैलाशचन्द्र की डाट ने इनके होश उड़ा दिए। त्रिलोक की चतुराई धूल में मिल गई। यह मित्र मंडली कुछ हताश सी होगई और सोचने लगी कि कैलाशचन्द्र पर रंग चढ़ाना कठिन है परन्तु उसके अन्तिम शब्दों ने कि "रहा वेश्या का नाच, उसके विषय में मैं कुछ नहीं कहता" इनकी आशालता को फिर कुछ हरा किया और विन्ध्येश्वरी प्रसाद जो अब तक चुपचाप था बोला :—

विन्ध्येश्वरी० (नम्रता पूर्वक)—हां मुझे भी इस बात का विश्वास नहीं होता इसी कारण मैं मौन था। अच्छा वेश्यागान सुनने में तो कोई विशेष हानि नहीं वहां तो चलो।

त्रिलोक०—तो इन्द्रसेन ने मुझ से अवश्य मिथ्या कहा होगा, अच्छा चलो वहां तो चलो।

कैलाश०—(सोच कर) अच्छा.........चलो चलता तो हूं (धीरे से) देखूं तो उसमें क्या है जो तुम इतने लट्टू हो रहे हो और सच्चिदानन्द इतनी घृणा करता और मुझे भी ऐसा ही करने को उपदेश करता है।

वह सब हां हां यह ठीक है चलो! यह कह कर प्रसन्नता पूर्वक दक्षिण की ओर चल पड़े। धन्य है जगतमाया तेरी माया बड़ी प्रबल है तेरी महिमा अपरम्पार है, देखो बेचारा कैलाश आकर्षण के कारण जाता है, कहीं आकर्षण से वहीं का न हो रहे।

षष्ठ परिच्छेद

दोपहर का ठीक एक बजा है। प्रातःकाल से अब तक बादल हो रहे थे। परन्तु अभी सूर्य्य ने मेघसमूह को छिन्न-भिन्न कर दिया है और यह प्रण कर लिया है कि सुबह से अब तक का बदला सायं काल तक निकाल लेंगे। कड़ाके की धूप पड़ रही है। मनुष्य तो मनुष्य हम किसी पशुपक्षी को भी विचरता नहीं पाते। सिवा पत्तों की खड़खड़ाहट के और कोई शब्द सुनाई नहीं देता।

ऐसे समय में हम एक लम्बे आदमी को राजपुर की सड़क पर नगर की ओर सटपटाता हुआ देखते हैं। इस व्यक्ति ने निर्दयी सूर्य्य की उष्ण किरणों से बचने के लिए एक श्वेत वस्त्र सिर से मुंह तक ढक रक्खा है। केवल उसकी आंखें खुली हुई हैं। बहुत समय तक हमारा पथिक तेजी से चला गया और बाजार में जाकर एक विशाल भवन के आगे ठहर गया।

यह नवयुवक उसके सदर फाटक पर न जाकर एक कोने में और एक छोटे से दरवाजे के सामने जिस पर एक चिक पड़ी थी खड़ा हो गया। उसने चिक उठा कर कुंडी खटखटायी और धीरे-धीरे से आवाज दी 'कैलाशचन्द्र'। अन्दर से कैलाश ने कहा 'कौन त्रिलोकचन्द' और यह कह कर दरवाजा खोल दिया।

यह कमरा कुछ साधारण ढंग पर बना हुआ था। एक तरफ एक मेज रखी हुई थी। मेज के सामने दो कुर्सियां पड़ी थीं और एक तार का लचकदार पलंग पड़ा था जिस पर एक मुलायम गद्दा अमीराना ढंग पर बिछा हुआ था। इस कमरे में एक दरवाजा अन्दर की तरफ भी था जिस पर एक सुन्दर पर्दा पड़ा था।

कैलाशचन्द्र ने त्रिलोकचन्द को एक कुर्सी पर बिठा कर दरवाजा फिर बन्द करके कुण्डी चढ़ा ली और अपने पलंग पर बैठ गया।

उनमें निम्नलिखित वार्तालाप होने लगा :—

त्रिलोक०—तुमने यह कमरा अपने पिता जी से मांग ही लिया।

कैलाश०—हां, आज प्रातःकाल ही मैंने उनसे प्रार्थना की थी जिसको उन्होंने विना संकोच के स्वीकार कर लिया। अव तुम लोग मेरे पास हर समय आ जा सकोगे और मेरे समय-कुसमय वाहर आने-जाने का भी किसी को ज्ञान न होगा।

त्रिलोक०—सत्य है मित्र, मेरे पिता ने कल रात मुझको देर से आने पर बड़ी ताड़ना की और मुझको वाहर जाने की मनाई कर दी है। इस समय वह सो गये थे मैं चोरी से चला आया हूं। परन्तु आज शाम तक मैं उनको प्रसन्न करके फिर आज्ञा प्राप्त कर ही लूंगा।

कैलाश०—इस समय तुम यहां कैसे आ पहुंचे !

त्रिलोक०—मैं तुम्हें एक सूचना देने आया हूं।

कैलाश०—कहो क्या है ?

हरिद्वार में एक बड़ा नामी थियेटर ठहरा हुआ है जो आज ही रात को तमाशा करके चला जायगा। उसमें हम ने एक एक्ट्रेस की बड़ी प्रशंसा सुनी है। ऐसा अवसर न खोना चाहिये और जिस प्रकार हो वहां पहुं-चना ही चाहिए। मेरी सम्मति में आज सायंकाल ६।। बजे की गाड़ी में चलो। ११।। बजे पहुंच जायेंगे। १२ बजे से २ बजे तक तमाशा देखेंगे और प्रातःकाल को डाक से लौट आयेंगे। तमाशा का तमाशा देख लेंगे और किसी को पता भी न चलेगा।

कैलाश०—परन्तु थियेटर तो दो ही घण्टे देखना मिलेगा !

त्रिलोक०—भाई देखो, दो घण्टे में उस एक्ट्रेस के नाच-गाने का आनन्द तो मिल जायगा। और कुछ नहीं तो उसके दर्शन तो अवश्य ही हो जायेंगे। हमें तो केवल उसका दर्शन ही इष्ट है।

क़ैलाश०—अरे यार दर्शन से क्या तृप्ति होगी। और फिर हरि-द्वार जाने की क्या आवश्यकता है क्या कभी थियेटर यहां न आयेगा।

त्रिलोक०—तुम क्या समझते हो इन बातों को, तुम हमारे कहने से चले तो चलो और यदि प्रसन्न होकर न लौटो तो तब ही कहना !

कैलाश०—परन्तु यदि पिता जी को ज्ञात हो गया तो बड़ी आपत्ति आएगी।

त्रिलोक०—अरे यार तुम तो व्यर्थ भय करते हो। प्रथम तो उन्हें ज्ञात ही न होगा और यदि हो भी गया तो क्या ? कुछ बहाना मिला देना और नहीं तो एक दो डांट ही सुन लेना। अब तुम बड़े हो गए तुम्हें पिता जी मारने से तो रहे। तुम मेरी ओर नहीं देखते ! मेरे पिता मुझ से कितने रुष्ट हैं तो भी मैं कुछ चिन्ता नहीं करता। तुम्हारे पिता तो इतने क्या बिलकुल भी रुष्ट नहीं हैं।

और भाई ऐसे कामों में कठिनाइयां हुआ ही करती हैं। उन का सोच विचार अथवा पश्चात्ताप ही क्या ?

कैलाश०—कुछ असमञ्जस में पड़ कर सोचता रहा और बहुत सोचकर खड़े होकर कहा अच्छा चलेंगे'।

त्रिलोक०—(खड़ा होकर) अच्छा इस समय तो मैं जाता हूं। रात्रि को समय पर आकर ले जाऊँगा। (चलते-चलते) रुपये का प्रबन्ध कर रखना।

कैलाश० –अच्छा।

इस पर त्रिलोकचन्द ने जिधर से आया था उधर को प्रस्थान किया। अब कैलाशचन्द्र सोच विचार में पड़ गया और घंटों तक सोच विचार में पड़ा रहा। कभी उसके मुख का रंग पीला पड़ जाता था, कभी फिर झट से सुर्ख हो जाता था। इसी तरह बहुत देर तक पड़े रहने के बाद उसने आप ही आप इस प्रकार बड़बड़ाना आरम्भ किया ?

क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता ! सच्चिदानन्द का कहना धर्म के अनुकूल तो अवश्य है परन्तु क्या कहूं मेरे चित्त की विचित्र दशा है। मन नहीं मानता। यदि कल मैं वेश्या नृत्य देखने या गान सुनने न जाता तब तो कोई झगड़ा न पड़ता परन्तु अब तो मैं बेतरह फंसा हूं, मैं उसकी तिरछी नजरों और खंजन सरीखी चंचल आंखों को कैसे भूल जाऊँ ! उसकी मस्तानी चाल व नाजो अन्दाज ने मेरे दिल पर अधिकार जमा

लिया है। शायद वह भी मुझ पर देखते ही मोहित होगई थी क्यों कि उसने मेरी ओर विशेष कृपा से कई वार देखा। एक वात और भी तो है। मैं यदि धर्म पथ पर चलना चाहूं तो भी वड़ा आदमी नहीं वन सकता क्योंकि मेरा मन वड़ा चंचल है। जव ऐसी ही वात है तो क्यों इस चन्दरोजा जिन्दगी को वृथा विना सांसारिक आनन्द लुटे खोऊँ। अगर मैंने अपना जीवन धर्मावलम्वन ईश्वराराधन में जिसमें कभी कृतकार्य्य नहीं हो सकता विता दिया तो वही मसल हो जायगी "न खुदा ही मिला न विसाले सनम् न इधर के रहे न उधर के रहे" धोवी का कुत्ता घर का न घाट का। मुझ जैसे अधम और चंचल वृत्ति मनुष्य के लिए तो यही उचित है कि जहां तक हो सके दुनियां का आनन्द लूटे और जो किस्मत में वदा है भोगे। वस अव निश्चय कर लिया कि मैं सच्चिदानन्द की वात कदापि न मानूंगा। परन्तु मेरी उसके सामने जवान तो निकलती ही नहीं। खैर, अगर देखूंगा कि वहुत चेपटाख करता है तो साफ शब्दों में कह दूंगा आपका मेरा कोई सम्वन्ध नहीं और मुझ से न मिला चिला करें। परन्तु उसने मेरे ऊपर अहसान वड़े भारी किए हैं क्या मुझे उससे ऐसा ही वर्ताव करना चाहिए ! अरे मैं ही क्या दुनियां में सभी ऐसा करते हैं कोई मैं ही विचित्रता नहीं करता ! त्रिलोक की भी यही राय है।

हां, क्या खूव याद आया, कल मालूम हुआ था वह भी इसी गाड़ी से हरिद्वार ही जायेगी। वस तो उसी के दर्जे में बैठेंगे और हरिद्वार तक जी वहलाते जायेंगे। वाह क्या सूझी, यह त्रिलोकचन्द को स्वप्न में भी न सूझी होगी।

इसके पश्चात् उसका वड़वड़ाना ऐसा हो गया कि एक शब्द भी स्पष्टतया समझ में न आता था। वह कुछ देर तक वड़वड़ाता रहा और धीरे धीरे निद्रा देवी की गोद में शरण ली। किस को ज्ञात है कि वह निद्रावस्था में भी ऐसे ही स्वप्न देखता रहा हो।

पाठक गण ! आपने देखा जगत् माया के जाल में फंसने का अनूठा

दृश्य ! अभी क्या, अभी देखिये और क्या क्या होता है ।

अभी तो कैलाशचन्द का वही हाल है :—

ईबतदाए इश्क है रोता है क्या ।
आगे आगे देखिये होता है क्या ।।

शोक ! शोक ! महा शोक ! भारतवर्ष के नवयुवक ऐसे समय में जब उनके देश को उनकी आहुति की आवश्यकता है इस अनित्य संसार की प्रकृति के उपासक बन बैठे । ऐसे देश की ईश्वर ही रक्षा करे ।

सप्तम परिच्छेद

रात्रि का अन्धकार दूर हुआ ही चाहता है । पूर्व में आकाश में कुछ लालिमा दिखाई पड़ने लगी । मुर्गे बड़ी देर से सोने वालों को निद्रा से जगाने के लिये कुंकड़ूकूं कुंकड़ूकूं की ध्वनि लगा रहे हैं । परन्तु प्रातः-काल की शीतल मन्द सुगन्ध वायु सोने वालों को थपथपीं लगा लगा कर सुला रही है और उठने नहीं देती । अधिकांश पुरुष अभी विस्तरों में पड़े ऐंड रहे हैं । और नियमी संयमी सज्जन उठ उठ कर अपने नित्य कर्मो से निवृत्त हो रहे हैं । ऐसे समय में सच्चिदानन्द अपने नित्य कर्म सन्ध्या वन्दनादि से निवृत्त होने के उपरांत एक सुन्दर कमीज, नीची साफ धोती, गांधी टोपी और एक गुरगाबी पैर में पहने तालियों का गुच्छा घुमाता धीरे-धीरे कैलाश के घर की तरफ आ रहा है । शीतल वायु की प्रसन्न करने वाली थपेड़ियां उसको चुप रहने नहीं देती । उसने धीरे-धीरे सीटी बजाना आरम्भ किया और फिर उसके अधर हिलने लगे । उसने धीरे धीरे गाना आरम्भ किया—

जगत की चाल निराली भ्रात
अच्छी कहै कोऊ बुरी लगत है, उल्टी बात सुहात ।
धर्म कर्म सब वृथा लगत है, पाप भले दिखलात ।।
छोटे मन की भली लगत है, कारी अविद्या रात ।

पाप कोट से दुराचरण का, खोटा द्रव्य चुरात ।।
कहैं 'गुप्त' इस पापी मन की, सब ही अनोखी बात ।। जगत० १

सच्चिदानन्द गाने में ऐसा मग्न हुआ कि वह अपने आप को भूल गया और कैलाशचन्द्र के मकान को जो गली जाती थी उसके बहुत आगे निकल गया। और यदि उसका ध्यान न टूटता तो ईश्वर जाने वह कहां पहुंच जाता। एक पत्थर में ठोकर खाने से उसका ध्यान टूटा तो उसे अपने चारों ओर देखकर अपने ऊपर हंसी आई और मुस्करा कर पीछे को लौट पड़ा। थोड़ी देर में वह कैलाशचन्द्र के मकान पर जा पहुंचा।

सच्चिदानन्द को कैलाशचन्द्र के एक सेवक से ज्ञात हुआ कि वह पूर्व के नीचे के कमरे में रहने लगा है। सच्चिदानन्द वहां गया तो कमरा बन्द पाया। केवल बाहर की कुण्डी चढ़ी हुई थी। कुण्डी खोल कर उसने अन्दर प्रवेश किया और खाली कमरे में एक कुर्सी पर बैठ कर कुछ सोचने लगा। कुछ देर बैठे रहने के पश्चात् वह खड़ा हो गया और दर्वाजे के किवाड़ से लग कर सोचने लगा। इतने ही में उसने दूर से कैलाशचन्द्र व त्रिलोकचन्द्र को अपनी ओर शीघ्रता से आते देखा।

"यह शैतान त्रिलोकी इसको इस समय कहां ले गया था! कहीं कैलाश इनकी कुसंगति के भीषण दलदल में फंस तो नहीं गया। मैं कई दिवस से भाग्यवश कैलाश से मिल नहीं सका कहीं उन्होंने इसके निर्मल हृदय पर दुर्व्यसनों का काला रंग तो नहीं चढ़ा दिया। कैलाश सदैव चंचल है वह कहीं वास्तव में दुर्व्यसनग्रस्त तो नहीं हो गया। यदि ऐसा हो गया तो भारी अनर्थ हुआ। एक होनहार नवयुवक को जिससे देश-सेवा की बड़ी आशायें थीं, इन्होंने अपने जैसा बना लिया। यह दुष्ट त्रिलोकचन्द्र न जाने कितने नवयुवकों को पतित बनायेगा! हे ईश्वर! आप कैलाश को सुमति प्रदान करें!"

यह विचार सच्चिदानन्द के हृदय में विद्युत् समान दौड़ गये और

उसने सत्य को जानना चाहा। वह जानता था कि त्रिलोकी के साथ रहते कैलाशचन्द्र निस्संकोच होकर कदापि सत्य न बोलेगा अतएव उसने इनकी बात छिपकर सुनना चाहा और यह विचार कर दर्वाजा वन्द कर के पलंग के नीचे घुस गया। इतने में कैलाश व त्रिलोक दर्वाजे पर निम्न वार्तालाप करने लगे।

त्रिलोक०—तुम ताला क्यों नहीं लगा गये थे।

कैलाश—मैं ताला इसलिये नहीं लगा गया कि प्रथम तो कुछ आवश्यकता न थी और दूसरे उस से किसी को सन्देह पड़ जाता। हाँ कुन्डी अवश्य चढ़ा गया था सो भी खुली पड़ी है।

त्रिलोक०—शायद किसी सेवक ने खोली हो।

कैलाश०—तो फिर वन्द क्यों नहीं की, ओह! कोई चिन्ता नहीं, चलो अन्दर वैठ कर वातें करेंगे।

इसके पश्चात् कैलाशचन्द्र ने किवाड़ खोलकर त्रिलोकचन्द्र समेत अन्दर प्रवेश किया और आप पलंग पर वैठ कर त्रिलोकचन्द को कुर्सी पर बैठा कर इस प्रकार बोला :—

कैलाश०—पता तो शायद किसी को नहीं चला।

त्रिलोक०—तुम फिर वही भय वाली बातें करने लगे। यदि चल भी गया है तो किसी की वला से। अच्छा, चलने में संकोच करते थे कहिए कुछ आनन्द आया या नहीं।

कैलाश०—निःसन्देह आपका कहना ठीक निकला, क्यों न हो हरिद्वार तीर्थराज ही ठहरा।

ग्रन्थकर्त्ता—ठीक मैं भी साक्षी दूंगा। तीर्थ यात्रा इसी लिए है :

त्रिलोक०—अच्छा आप कृपया निर्णय करें कि हम जो आप से वेश्यानृत्य व थियेटर इत्यादि देखने को कहते थे ठीक था या नहीं।

कैलाश०—(शीघ्रता से) अजी आपका कथन सत्य था और सच्चिदानन्द मुझ को वृथा ही रोकता था।

त्रिलोक०—निःसन्देह अब कहिये सच्चिदानन्द से कैसे निपटेगी ?

और भाई सुन लो हमारी सम्मति में तो आप सच्चिदानन्द से कोई सम्वन्ध न रखें क्यों कि वह आप की वृथा ही स्वतन्त्रता छीनता है। (इतना कह कर त्रिलोकचन्द ने कैलाश की ओर देख कर जो पृथ्वी पर देख रहा था दांतों में जिह्वा दवाली)।

कुछ देर तक सोचने के वाद कैलाशचन्द्र ने लम्वी सांस भर कर कहा 'हां मैंने भी यही निश्चय किया है'।

त्रिलोकचन्द्र अपनी मनोरथरूपी वेल को फलते देख बड़ा प्रसन्न हुआ और उसका दुराचरण सूचक पीला वर्ण एक वार सुर्ख हुआ और फिर पीला पड़गया।

परन्तु फिर कैलाशचन्द्र ने कहा :—

कैलाश०—परन्तु मैं अपने धर्मशिक्षक मित्र से शत्रुता किस प्रकार करूंगा!

त्रिलोक०—(सर हिला कर) वाह तुम भी किन वातों का विचार करते हो। सुनो गीता में श्रीकृष्ण जी लिखते हैं कोई पिता नहीं कोई माता नहीं, कोई भ्राता नहीं, कोई भगिनी नहीं। यह संसार के सम्बन्ध सव मिथ्या हैं। इनके लिए कभी कर्त्तव्य परायण पुरुषों को कर्त्तव्य से पग पीछे न उठाना चाहिए। श्रीकृष्ण जी ने इसी उपदेश से अर्जुन को मित्र तो मित्र सम्वन्धियों से शत्रुता कराना क्या, लड़ा दिया। यह लड़ाई किस कारण हुई थी! कौरव, पांडवों की स्वतंत्रता पर हस्तक्षेप करते थे। इसीलिए मुझे आश्चर्य होता है कि तुम अपने एक सम्वन्धी नहीं साधारण मित्र से अपनी स्वतन्त्रता के लिये विगाड़ने से इतना संकोच कर रहे हो। तुम्हारा यह कार्य कदापि धर्म के विरुद्ध न होगा। (तेजी से) और यदि मेरे जी की पूछते हो तो ऐसी तैसी धर्म की। मैं कई वार कह चुका हूं और फिर वलपूर्वक कहता हूं कि सव से अच्छा संसार में धर्म यही है कि Eat, drink and be merry' अर्थात् खाओ पीओ मजा उड़ाओ। संसार में मनुष्य केवल आनन्द करने को भेजा गया है नहीं तो पशुओं और मनुष्यों में अन्तर ही क्या हुआ जो वेचारे कर्म

करने में स्वतन्त्र नहीं हैं। अतएव आनन्द के सन्मुख सम्बन्धी मित्र सब तुच्छ हैं। यह धर्म उन्हीं को सूझता है जिनको खाने को रोटी न हो करने को रोजगार न हो और दिमाग में कुरा लग गया हो। किसी सूरत में तुम्हारा सच्चिदानन्द से सम्बन्ध तोड़ना अनुचित नहीं हो सकता।

ग्रन्थकर्त्ता—सत्य वचन, गीता का उपदेश हो तो त्रिलोकचन्द जैसा हो। मैं भी साक्षी देता हूं कि मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य आनन्द प्राप्त करना है परन्तु आनन्द है कौनसी चिड़िया का नाम !!!

कैलाश०—और जितने यह आर्यसमाज के उपदेशक फिरते हैं क्या सब मूर्ख हैं जो धर्म उपदेश करते हैं।

त्रिलोक०—(तड़क कर) मूर्ख नहीं वल्कि धूर्त। बुला लाना किसी को मुझ से इस विषय पर शास्त्रार्थ करले।

त्रिलोकचन्द्र की यह बात सुन कर सच्चिदानन्द के मन में आया कि उससे शास्त्रार्थ करे परन्तु फिर कुछ विचार कर मन में यह कह कर "भैंस के आगे वीन वजावे मुझसा कौन अनाड़ी" चुप हो रहा और वहीं छिपा-छिपा उनकी बातें सुनने लगा। कुछ देर तक विचारने के बाद कैलाशचन्द्र ने कहा—

कैलाश०—अच्छा मैं तो पहिले ही निश्चय कर चुका हूं केवल कुछ भ्रम था सो तुमने दूर कर दिया। अब मैं ऐसा ही करूंगा।

त्रिलोक०—वस तो ठीक है (वाहर धूप को देखकर) ओ हो ! बड़ी भूल हुई, सूर्य उदय हो गया मैं अब तक घर नहीं पहुंचा, पिता जी क्या सोचते होंगे। अच्छा मैं तो जाता हूं। (चलते-चलते) लेकिन देखना सच्चिदानन्द के कान में न पड़ने पावे कि मैंने तुमको यह सम्मति दी थी। (इतना कह कर त्रिलोक फुर्ती से बाहर चला गया)।

कैलाश०—(धीरे से) नहीं, मैं न कहूंगा।

इतने में पलंग के नीचे से आवाज आई 'तुम न कहना परन्तु मैं कहे विना न रहूंगा, मैंने तो सब बातें सुन लीं।

कैलाशचन्द्र ने घबड़ाया-सा होकर पलंग की ओर देखा तो सच्चिदानन्द को पलंग पर बैठे पाया जो नीचे से अदृश्य निकल कर पलंग पर बैठ गया था।

कैलाश के आश्चर्य व लज्जा का वारपार न रहा।

अष्टम परिच्छेद

कैलाशचन्द्र के यहां से चलकर जब त्रिलोकचन्द घर पर पहुंचा तो पिता जी दरवाजे पर खड़े मिले और आश्चर्य से उन्होंने पूछा :—

पिता०—आज तुम कहां चले गये थे ?

त्रिलोक०—कल हम कई सहपाठियों ने यह निश्चय किया था कि आज प्रातःकाल अन्धेरे से ही घूमने नालापानी चलेंगे वहां से ही इस समय मैं आ रहा हूं।

पिता०—अच्छा जाओ दो तीन लड़के तुम्हारी बाट जोह रहे हैं।

जेल से छुटे हुए कैदी के समान प्रसन्न होता हुआ त्रिलोकचन्द्र अपने कमरे की ओर चला और वहां जाकर विन्ध्येश्वरी और प्रताप को बैठे पाया। मुस्कराहट से हाथ मिलाने के पश्चात् वह भी एक कुर्सी पर बैठ गया।

विन्ध्येश्वरी०—कहिये आज आप कहां गये थे ?

त्रिलोक०—आप लोगों से क्या छिपाना। मैं कल रात की गाड़ी से कैलाश को लेकर हरिद्वार गया था। वहां एक थियेटर आया हुआ था। उसी के देखने को हम गए थे और प्रातःकाल की गाड़ी से लौट आये। क्षमा कीजिये मुझे स्वयं शोक है कि मैं आप लोगों को न ले जा सका। एक तो आप से मिलने का समय न मिला और दूसरे कैलाश का भय था कि शायद वह सब के साथ न चलता। लो सुनो और प्रसन्न हो कि कैलाश पर ऐसा रंग चढ़ाया है कि वह कभी हमारी पार्टी से पृथक् नहीं हो सकता और उसने वचन दे दिए हैं कि वह कदापि सच्चि-

दानन्द से कोई सम्वन्ध न रक्खेगा। मेरा सारा व्यय उसने ही दिया और अब ईश्वर की कृपा हुई तो खूब दावतें उड़ा करेंगी।

प्रताप०—हां जी, वह वड़े रईस का लड़का है।

इसी प्रकार यह कुछ देर तक वार्तालाप करते रहे जिसके लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके पश्चात् विन्ध्येश्वरी व प्रताप चले गए।

अब हम उस स्थान का कुछ वर्णन लिखते हैं जहां हम कैलाशचन्द्र व सच्चिदानन्द को छोड़ आये हैं।

जब कैलाशचन्द्र ने सच्चिदानन्द को बैठे पाया उसके आश्चर्य व लज्जा का वारापार न रहा। उसका रंग पीला पड़ गया। वह क्षण भर खड़ा सोचता रहा और सहस्रों विचार उसके मन में विद्युत् समान दौड़ गए। यद्यपि उसने बड़ी उद्दण्डता से सच्चिदानन्द को उत्तर देने का प्रण किया था लेकिन उसकी सारी उद्दण्डता मिट्टी में मिल गई। उसके मुख से एक शब्द न निकला, कुछ देर खड़े रहने के पश्चात् उसके विचार में न जाने क्या आया कि वह एकदम झपटा और कमरे से बाहर निकलना चाहा। परन्तु सच्चिदानन्द ने उसको ऐसा करने न दिया। उसका फुरती से हाथ पकड़ लिया और अपनी ओर खींच लिया यद्यपि कैलाशचन्द्र सच्चिदानन्द से अधिक वली था तो भी कहावत के अनुसार 'चोर की सवा टांग' अपना हाथ न छुड़ा सका और घबराया-सा होकर पलंग पर बैठ गया। इस समय की अवस्था का चित्र खेंचना लेखनी की शक्ति से बाहर है पाठक स्वयं ही समझलें। कैलाशचन्द्र का मन उस समय दुविधा का निवास-स्थान बन रहा था। वह चुपचाप बैठा रहा और सच्चिदानन्द ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

सच्चिदानन्द—शोक है और तुम्हारे दुर्भाग्य हैं कि तुम अपनी बुद्धि बिल्कुल नहीं रखते। मैं जिस तरह कह दिया करता था तुम हां कर दिया करते थे। आज जिस तरह त्रिलोक बक गया तुम्हारे दिल में बैठ गई। इन प्राकृतिक मिथ्या पदार्थों का आकर्षण अधिक होता है।

परन्तु जो विचार शील होते हैं वह सच्चे आनन्द को ढूंढ़ते हैं। तुम विचार कर देखो कि तुम को वेश्यागान-प्रीति से कितनी हानि है ! तुम्हारे रुपये से वह हत्यारिन गाय कटायगी और तुम प्रसन्न होगे, हाय ! राजा दिलीप के समान गौवों पर प्राण निछावर करने वाले भारतवासियों की सन्तान अब गोहत्या कराने को धन देती है, जो ऋषि-मुनि कहा करते थे :—

"मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पंडितः ॥"

अर्थात् परस्त्री को माता समान मानना चाहिए इत्यादि हा ! शोक उनकी सन्तान बाजारी औरतों को देखकर कामातुर हो जाती है। धर्म के ऊपर हकीकत राय के समान प्राण खोने वालों की सन्तान धर्म को व्यर्थ ऐसा वैंसा कह कर गालियां देती हैं। अब यदि भारतवर्ष के दुर्भाग्य नहीं तो क्या हैं। हमारे देश में ऐसे ऐसे दुष्ट हैं कि स्वयं विगड़ कर संतुष्ट नहीं होते वरन् औरों को बिगाड़ना भी आवश्यक समझते हैं और सीधे साधे मूर्खों को बहकाने के लिये धूर्त धर्मपुस्तकों का आश्रय लेते हैं। (इतना कहते-कहते सच्चिदानन्द को जोश आ गया और उसने फिर कहना आरम्भ किया) "निःसंदेह गीता में लिखा है कोई माता नहीं, कोई पिता नहीं इत्यादि और कर्त्तव्यपरायण पुरुषों को धर्म पथ से कभी च्युत न होना चाहिए, इसी का उपदेश उस शैतान की रुह और पापों के अवतार त्रिलोकचन्द्र ने तुम को दिया था और क्या ही अच्छे अर्थ लगाये थे। सच्चे क्षत्रिय और राजपुत्रों का धर्म दुष्टों को दंड देना है इसी लिए अर्जुन को श्रीकृष्ण जी ने सम्बन्धियों का विचार न करके धर्मपथ पर दृढ़ रहने की आज्ञा दी थी। लेकिन क्या तुम्हारा धर्म वेश्यागान सुनना, वेश्यानृत्य देखना, वेश्यागमन, करना थियेटर देखना, पिता को धोखा देकर बिना आज्ञा प्राप्त किये बाहर चले जाना, झूंठ बोलना इत्यादि हो हैं और इन्हीं में आप आनन्द समझते हो। बेशक मनुष्य का मुख्य कर्तव्य आनन्द प्राप्ति है, परन्तु आनन्द कहते किसे हैं यह भी जानते हो !

देखो श्रीकृष्ण गीता के अठारहवें अध्याय के ३९ वें श्लोक में लिखते हैं।

यदग्रे चानुबंधे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थम् तत्तामसमुदाहृतम् ॥

अर्थात् वह आनन्द जो प्रारम्भ में अथवा अन्त में शरीर की वाह्य इन्द्रियों को आर्कषित करता है और जो निद्रा आलस्य और विचार-शून्यता इत्यादि से उत्पन्न होता है वास्तविक सुख नहीं है। जिन बातों को आप सुख समझे बैठे हो वह अगाध दुःख का मूल है कहावत मशहूर है 'जगत्‌विदितमेतद् दीयते विद्यमानम्। नहिं शशि विषाणे कोऽपि कस्मै ददाति'। अर्थात् जिसके पास जो होता है वही उस का दान दे सकता है। प्रकृति, जीव, ईश्वर में से केवल ईश्वर आनन्दमय है अतएव उसकी ही उपासना से आनन्द प्राप्ति हो सकती है अन्यथा कदापि नहीं। तुम किस ख्याल में हो। जिसको तुम अमृत समझ कर पान करता चाहते हो वह वास्तव में हलाहल विष है। मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि यदि तुम अपनी वर्तमान अवस्था से न संभले तो कुछ ही दिनों में पक्के जुवारी, चोर, मांसाहारी, शराबी-कबाबी बन जाओगे। इन सांसारिक पदार्थों की तृष्णा बुझाने से बुझ नहीं सकती वरन् बुझाये से और बढ़ती ही है। इसका एक मात्र उपाय दमन है। यह पथ अच्छा नहीं है! जिस कंटक-युक्त पथ पर तुम चल रहे हो वह तुमको खोकर रहेगा। जब तुम किसी योग्य न रहोगे तो सब मतलबी मित्र तुम्हारा साथ छोड़ देंगे। कोई तुम से बात भी न करेगा। यदि तुम्हें किसी आजकल के मित्र के घर भोजन करने की आवश्यकता होगी और तुम जाकर अपनी इच्छा प्रकट करोगे तो धक्के मार-मार कर निकाल दिये जाओगे, हो किस होश में! सुनो एक कुण्डली है।

साईं या संसार में मतलब को व्यवहार।
जब लग पैसा गांठ में तब लग ताको यार ॥
तब लग ताको यार यार संग ही संग डोले।
पैसा रहा न पास यार मुख से नहीं बोले ॥

कहे गिरधर कविराय जगत् का याही लेखा।
करत वेगरजी प्रीति यार हम विरला देखा॥

तुम्हारे मित्र जब जवाब दे देंगे, तुम दुराचारों के कारण किसी योग्य न रहोगे तो तुम पछताओगे परन्तु 'तब पछताए होत क्या जब चिड़ियां चुग गई खेत' और फिर तुमको आत्मघात की सूझेगी और कुत्ते की मौत मरोगे। यदि चाहते हो कि तुम सच्चा आनन्द प्राप्त कर सको तो आर्य समाज की शरण लो, नहीं तो तुम्हारे लिये इस सभ्य संसार में पशुओं से ऊंचा स्थान न होगा।

(कुछ धीरे से) क्षमा करना, मैं जोश में बड़े-बड़े कटु शब्द कह गया। मेरा कर्तव्य तुमको समझाना था सो मैंने कर दिया, आगे तुम्हारी इच्छा !

इतना कह कर सच्चिदानन्द चुप हो गया और रुमाल निकाल कर अपना पसीना पोंछने लगा।

परन्तु जैसे चिकने घड़े पर पानी का कुछ असर नहीं होता जैसे ऊसर पृथ्वी में मूसलाधार वर्षा कुछ उत्पन्न नहीं कर सकती, जैसे बन्दर कितनी प्रशंसा करने पर भी अदरक का स्वाद नहीं जान सकता, जैसे मुर्गा कूड़ी पर पड़े हुए लालों की कदर नहीं जान सकता जैसे अन्धा सूर्य की ज्योति से लाभ नहीं उठा सकता, जैसे काले रंग पर कोई रंग नहीं चढ़ सकता, और बहरा जैसे उपदेशों से लाभ नहीं उठा सकता वैसे ही कैलाशचन्द्र के हृदय पर सच्चिदानन्द के रोमांच करने वाले उपदेश का कुछ असर न पड़ा। और उसने अपने को निर्लज्जता का अवतार साबित करने के लिए एक पर्चे पर सच्चिदानन्द को यह लिख कर दे दिया। "आपके धार्मिक उपदेशों की मुझे जरूरत नहीं है। आपका मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। आप चले जायें और मुझ से न मिला-चिला अथवा बोला-चाला करें।"

यह पर्चा पढ़ कर सच्चिदानन्द के जोश भरे दिल को हिला देने

वाला धक्का लगा। उसकी हिम्मत टूट गई और उसके चेहरे से उदासी टपकने लगी।

वह उठ खड़ा हुआ और बोला :—

अच्छा जो ईश्वर की मर्जी, मैं चाहता था कि आपके अहसान से उऋण होने के लिए आपकी मित्रवत् सेवा करता परन्तु इस बात को भी मैं स्वीकार करता हूं क्योंकि इसमें आपकी प्रसन्नता है।

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे।
विकसति यदि पद्मम् पर्वताग्रे शिलायाम्॥
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः।
न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम्॥

चाहे भानु पश्चिम से उदय होने लगे, चाहे पर्वतों में कमल खिलने लगें, चाहे पहाड़ चलने लगें, और अग्नि चाहे ठण्डी पड़ जाए, परन्तु सज्जन लोग अपने कहे को नहीं पलटते। मैं आपको कई वार मित्र कह चुका हूं अतएव कदापि आपसे द्वेषभाव नहीं कर सकता, एक बात सुन लो और मैं जाता हूं। यदि आपको कभी आपके मित्र धोका दें और आपको मेरी आवश्यकता हो तो निःसंकोच होकर आज्ञा देना। मैं प्रसन्नता पूर्वक आ उपस्थित हूंगा। (आंसू भर कर) अच्छा जाता हूं अन्तिम नमस्ते। ईश्वर आपका भला करे। बोलते-बोलते उसका गला भर आया और यह कह कर सच्चिदानन्द चला गया।

सच्चिदानन्द की अंतिम बात ने कैलाश के हृदय-पाषाण को मोम कर दिया और पाठकगण यह सुन कर आश्चर्य करेंगे कि कैलाशचन्द्र की आंखों से भी दो आंसू टपक पड़े जिनको उस ने झट पूछ दिया।

सच्चिदानन्द जितना धर्मात्मा था उतना ही चालाक था। वह समझ गया कि मेरे कहने का असर मन पर स्थायी रूप से न पड़ेगा। अतएव उसने अधिक वार्तालाप न कर अपने घर का रस्ता लिया।

कैलाश ने अकेला होने पर दर्वाजा अन्दर से बन्द कर लिया और उदास चित्त हो पलंग पर पड़ रहा। थोड़ी देर में उसके खुर्राटों ने बतला दिया कि वह निद्रा देवी की गोद में आराम कर रहा है।

दूसरा अध्याय

AVOID BAD SOCIETY

प्रथम परिच्छेद

पाठक ! अब इस उपन्यास का सबसे रोचक अध्याय प्रारम्भ होता है। इसकी घटनायें बड़ी आश्चर्यजनक और विचित्र हैं। आशा है आप अधिक रुचि से पढ़ेंगे।

दोपहर का समय है। ठीक एक बजा है कई रोज से धूप बड़ी कड़ाकेदार पड़ रही है। देहरादून के पत्थर गरमी के मारे अंगारा हो रहे हैं। बड़ी तेज वायु चल रही है और पत्थरों के स्पर्श में आकर स्वयं गरम होकर 'लू' बन रही है। परन्तु सामने मसूरी पहाड़ पर मेघ छा रहे हैं और यह छांह-धूप का दृश्य बड़ा सुहावना प्रतीत हो रहा है। लो क्षण भर में क्या से क्या हो गया। बात की बात में आकाश-मंडल मेघसमूह से आच्छादित हो गया। धूप से छांह हो गई। और से कुछ और ही हो गया। प्रकाश से अन्धकार हो गया। गरमी के स्थान में ठंग हो गई। उष्ण वायु के बदले शीतल वायु ने बहना आरम्भ कर दिया। आकाश नीले से काला हो गया। यह तो रहे प्राकृतिक दृश्य।

इनके अतिरिक्त और कई बातें बदल गईं। आज कैलाशचन्द्र कुछ और से और ही हो गया। इस उपन्यास का सीन भी सर्वथा बदलता गया। पहिला अध्याय समाप्त होकर दूसरा अध्याय आरम्भ हो गया। त्रिलोकचन्द्र की चिन्ता, प्रसन्नता और निश्चिन्तता भी बदल गई। और कैलाशचन्द्र का जीवन भी पहिले से बदल गया। यह सब बातें बदल गईं परन्तु सच्चिदानंन्द वही हैं। उसके मित्रभाव में कोई अन्तर न पड़ा। कैलाशचन्द्र के घर से जाकर जब वह अपने घर पहुंचा तो उसे लगा कि उसके पिता मुरादाबाद जा रहे हैं और उसकी बड़ी राह देख रहे थे।

सच्चिदानन्द के पिता वड़े व्यवसायी थे। वह प्राय: तिजारत के लिए मुरादावाद जाया करते थे। उनका एक गृह मुरादावाद में भी था और कभी-कभी तो वह सकुटुम्ब वहां चले जाया करते थे और दो-दो महीने वहाँ रह आया करते थे। सच्चिदानन्द प्राय: अपने पिता के साथ न जाकर देहरे ही रह जाया करता था। परन्तु छुट्टियों के कारण उसके पिता उसको साथ ले जाना चाहते थे और सच्चिदानन्द ने भी इधर की घटना से दुखित होकर जाने की इच्छा प्रकट की। गाड़ी में समय थोड़ा ही रह गया था। तैयारियां शीघ्रता से की गईं। सच्चिदानन्द कपड़े पहिन कर अपने पढ़ने के कमरे में गया और कलम दवात उठाकर एक कागज पर वड़े विचारपूर्वक एक पत्र लिखा और एक नौकर बुलाकर, 'जाओ झपट कर सेठ करोड़ीमल के लड़के कैलाशचन्द्र को दे आओ और उस को पत्र देकर कहा देकर विना कुछ कहे चले ही आना, कुछ कहना मत और न वहां रुकना। अच्छा कहकर नौकर चला गया। और सच्चिदानन्द ने अपने पिता के साथ गाड़ी में बैठ कर स्टेशन को प्रस्थान किया।

इधर कैलाशचन्द्र कुछ उदास चित्त अपने कमरे में बैठा हुआ कोई उपन्यास पढ़ रहा है। आइये देखें कौन-सा उपन्यास है। उपन्यास का नाम 'चन्द्रकान्ता सन्तति है'। कैलाशचन्द्र अपने ध्यान में ऐसा निमग्न है कि उसको कुछ पता नहीं कि दर्वाजे पर एक नौकर हाथ में चिट्ठी लिए कितनी देर से खड़ा है। यहां तक कि नौकर को बुलाना पड़ा उसने धीरे से कहा, 'वावू जी' वावू जी' चौंके और गर्दन उठा कर दर्वाजे की ओर देख कर पत्र लेने को हाथ बढ़ाया। पत्र लेकर वावू साहव ने पूछा "किसने भेजा है"। नौकर जिसका जन्मस्थान मिर्जापुर में था यह कह कर चला गया "या चिठिया में सब कुछ लिखो है" : पत्र लिफाफे में बन्द था, उसके ऊपर 'कैलाशचन्द्र' लिखा था। कैलाशचन्द्र ने लिखाई से तुरन्त पहिचान लिया कि पत्र सच्चिदानन्द का है। उसने आश्चर्य और भय से पत्र खोला, उसमें यह लिखा था :—

प्रियवर !

मैं जगत् पिता परमात्मा के अपार अनुग्रह से सकुशल हूं, और पूर्ण आशा है आप भी प्रसन्न व कुशल पूर्वक होंगे आप के उस दिवस के दुःखित करने वाले वर्ताव ने मुझे अपार दुःख दिया जो अवर्णनीय है और उसने मेरे विचार आपके बारे में पलट दिये हैं। मैं आपका पक्का शत्रु हो गया हूँ और मत समझना मैं आपका अब भी मित्र हूं और आपको प्रेम करता हूं। तुम तो बड़े दुष्ट पापी और कुकर्मी और विचारशून्य निकले। मैं तो तुमको बड़ा विचारशील समझता था। परन्तु मेरा विचार मिथ्या निकला तुम्हें अब पापी समझता हूं। तुम चोरी, व्यभिचार, असत्य भाषणादि दुर्गुणों से परिपूर्ण हो और विचारशीलतादि सद्गुणों से सर्वथा रहित हो। तुम त्रिलोकचन्द्र के बहकाने में आकर नहीं बिगड़े। वरन् अपनी कामातुरता के कारण धर्मपथ से च्युत हुए हो। मुझे अब तुम से कोई सम्बन्ध नहीं। और न मुझे तुमसे उतनी ही प्रीति है जितनी पहले थी बल्कि पहिले का सौवां हिस्सा भी नहीं। हां घृणा अवश्य अधिक है। तुमने जब से मेरा साथ छोड़ा है तुम्हारे साथ शत्रुता उत्पन्न हो गई है। और तुम्हारे शत्रुओं के साथ सहानुभूति दिनोंदिन बढ़ती जाती है। अब मैं आपसे बदला लेने की फिक्र में हूं। और तुम्हारे शत्रुओं की सहायता करने की फिक्र में हूं। मैं चाहता हूं तुम सदा दुःखी रहो या अभी मर जाओ जो मेरा मन शान्त हो और कभी सुख पूर्वक आयु व्यतीत न करो। तुम सौ वर्ष तक जी सको यह ऐसा असम्भव है जैसा एक और एक तीन होना। मुझे दुःख होगा यदि

तुमको परमात्मा सुखों के शिखर पर चढ़ा दे।
वह तुमको दुःख के अपार अन्धेरे गढ़े में ढकेल दे तो अच्छा हो।
हे परमात्मा आप घट-घट के वासी हैं आप सबके मनकी जानते हैं:
आप यह भी जानते हैं कि कैलाशचन्द्र पापी है। यह अन्याय होगा यदि
आप कृपाकर कैलाशचन्द्र को सुमति प्रदान करें व सुख दें।

—सच्चिदानन्द स्वरूप गुप्त

इस पत्र को पढ़कर कैलाशचन्द्र बड़ा लज्जित व दुःखित हुआ और कहने लगा 'हमसे तो चलते-चलते हजरत कह गए थे कि हम सदा मित्र रहेंगे। अब यह मित्रता करते हैं कि ऐसे गालियों से भरे पत्र भेज कर मन दुखाते हैं।' इतना कहते कहते कैलाशचन्द्र ने देखा कि लिफाफे के अन्दर एक और कागज का टुकड़ा भी है। उसको निकाल कर जो पढ़ा तो यह लिखा था—

'प्रिय कैलाश'! इस लिफाफे में तुम्हारे लिए एक पत्र रक्खा है तुम वास्तव में इसी योग्य हो कि तुमको ऐसा लिखा जाय। यदि कोई और होता तो अवश्य ऐसा लिखता। परन्तु मैं तुमको मित्र भाव से देख चुका हूं। और अब भी प्रतिज्ञानुसार तुमको मित्र समझता हूँ। इसलिए यदि जानना चाहते हो कि मेरी क्या इच्छा है और क्या संदेसा है तो पत्र को एक बार फिर पढ़ जाओ परन्तु प्रथम लाइन से आरम्भ करके एक-एक लाइन छोड़ कर पढ़ना।

तुम्हारा
स० स्व० गुप्त

पाठक गण! सच्चिदानन्द बड़ा योग्य है और उसकी अपूर्व योग्यता का यह एक साधारण नमूना है पत्र को फिर पढ़िये और एक-एक लाइन छोड़ते जाइये तो अर्थ बिल्कुल उलट जायेंगे।

कैलाशचन्द्र भी पत्र पढ़ कर बड़ा विस्मित हुआ और घंटों तक पत्र दोहराकर पढ़ता और सच्चिदानन्द की प्रशंसा करता रहा। शाम को उसने

यह पत्र सब मित्रों को दिखाया और सबको सच्चिदानन्द की प्रशंसा करनी पड़ी।

द्वितीय परिच्छेद

जून व्यतीत हो चुका है। वर्षा का प्रादुर्भाव होना आरम्भ हो गया है। संध्या के ५ बज चुके हैं। बादलों ने नियत समय से पूर्व ही सूर्य को छिपा लिया है। बहुत से मनुष्य तो समझ रहे हैं कि सूर्य अस्त हो गया और अपनी-अपनी दूकान बंद कर अपने घर को जा रहे हैं। सूर्य-तपित जीव जन्तु साया देखकर बाहर आकर आराम ले रहे हैं। देहरादून में राजपुर की सड़क पर श्वेतांग नवयुवक अपनी-अपनी प्रेमपालित युवतियों के साथ टहल कर शीतल वायु का आनन्द ले रहे हैं। अब हम अपने पाठकों को अधिक न भटका कर अपने मतलब की ओर झुकते हैं।

सच्चिदानन्द के पत्र को आये कई दिवस व्यतीत हो चुके हैं। त्रिलोक-चन्द्र अपने मकान में, जो दिलाराम बाजार में है, बैठा हुआ कोई उपन्यास पढ़ रहा है। इतने में किसी के पैर की आहट सुनकर त्रिलोकचन्द्र चौंका और एक युवक को आते देख उठ खड़ा हुआ।

त्रिलोक०—(एक कुर्सी की ओर इशारा करके) आओ मिस्टर चन्द्रशेखर ! बड़े दिनों में दर्शन हुए, कहिए कुशलपूर्वक तो हो !

चन्द्र०—(बैठकर) हां अच्छा हूँ। अब तो यार तुम्हारी पाँचों घी में हैं।

त्रिलोक०—(खिलखिलाकर हंसकर) और सिर कढ़ाई में है।

चन्द्र०—(आश्चर्य से) सो क्यों ?

त्रिलोक०—अरे यार बड़ा परिश्रम करना पड़ा और अब भी कुछ दिनों तक खुशामद ही करनी पड़ेगी।

चन्द्र०—इसमें तो तुम ताक हो।

त्रिलोक०—अरे ताक क्या खाक हैं।

चन्द्र०—अच्छा एक हमारी बात तो सुनो !

त्रिलोक०—वह क्या ?

चन्द्र०—बस यह-कि हमें भी अपनी पार्टी में सम्मिलित करलो और कैलाशचन्द्र से मित्रता करा दो। हम देखो तुम्हारे पुराने मित्र हैं। याद है जब हम आठवीं श्रेणी में पढ़ा करते थे हम में कितनी गाढ़ी मित्रता थी। अब तुम्हारी कृपा से हम भी तुम्हारे साथ दावतों का आनन्द उड़ा सकें तो हम तुम्हारे बड़े कृतज्ञ होंगे।

त्रिलोक०—यह कितनी बड़ी बात है। चलो आज और ही चलो कैलाशचन्द्र एक दावत देने का वायदा भी कर चुका है। जरा मैं इस पृष्ठ को समाप्त कर लूँ।

चन्द्र०—कौन-सा उपन्यास है ?

त्रिलोक०—'लण्डन रहस्य' कह कर त्रिलोकचन्द्र पुस्तक पढ़ने में निमग्न हो गया। और चन्द्रशेखर मेज पर पड़ी हुई किताब को उलटने-पलटने लगा। वह पृष्ठ समाप्त करने पर त्रिलोकचन्द्र ने कपड़े पहने और चन्द्रशेखर को साथ ले कैलाश के घर की ओर चल दिया।

चन्द्रशेखर एक ब्राह्मण का पुत्र था। इसका चाल-चलन अच्छा न था और पक्का शराबी था।

चलें देखें, कैलाशचन्द्र क्या कर रहा है !

कैलाशचन्द अपने कमरे में अकेला नहीं है। उसके कमरे में हम विन्ध्येश्वरीप्रसाद और प्रतापसिंह को विराजमान पाते हैं।

विन्ध्येश्वरी प्रसाद एक कायस्थ का लड़का है और पक्का माँसाहारी है। विंध्येश्वरीप्रसाद कानपुर में रहता है। प्रतापसिंह राजपूत लड़का है। इसकी वृत्ति विषय की ओर सबसे अधिक झुकी है। प्रतापसिंह झण्डे-मोहल्ले में रहता है। त्रिलोकचन्द भी एक कायस्थ का पुत्र है। यह सब अवगुण विराजमान हैं। चन्द्रशेखर का मकान भी दिलाराम बाजार में है।

कैलाशचन्द्र बैठा चन्द्रकांता पढ़ने में निमग्न है और विन्ध्येश्वरी व

प्रताप चुपचाप बैठे उसकी ओर देख रहे हैं। कभी-कभी सिर उठाकर दर्वाजे की ओर देख लेते हैं और फिर सिर नीचे कर लेते हैं। कुछ देर पश्चात् कैलाशचन्द्र ने उपन्यास बंद करके रख दिया और दर्वाजे की ओर देखकर कहा—"त्रिलोकी अभी तक नहीं आया ?"

यह बात पूरी भी न हो पाई थी कि पैरों की धमधमाहट हुई और त्रिलोकचन्द्र चन्द्रशेखर को लिए आ पहुंचा। और पलंग पर जा बठा।

प्रताप०—अहो ! त्रिलोकचन्द तुम्हारी आयु बहुत बड़ी है। लाला साहब आपको अभी याद कर रहे थे।

विंध्येश्वरी०—कहो आज इन्हें (चन्द्रशेखर) को कहाँ से पकड़ लाये।

त्रिलोक०—ऐसे ही रास्ते में से पकड़ लाया। इनकी ही हमारी पार्टी में कमी थी। इनके साथ कुछ और ही आनन्द आएगा। अच्छा तो अब देर क्या है ?

कैलाश०—कुछ देर नहीं। केवल स्थान निश्चय करना है। मेरे विचार में तो परेड का नाला सर्वोत्तम रहेगा।

त्रिलोक०—हां बड़ा सुहावना समय है, बस चल ही दो। कुछ देर पश्चात् यह पार्टी उठ खड़ी हुई।

त्रिलोक०—अच्छा तो प्रताप और चन्द्रशेखर को मिठाई लेने भेज दो। और हम लोग चलकर बैठते हैं।

कैलाश०—इनको क्या दे दूं।

त्रिलोक०—भाई सेठ आदमी हो, प्रत्येक को आठ आने का तो खिलाओ। पाँच आदमी हैं सीधे २॥) ढाई रुपये हुए।

कैलाश०—(संकोच से)तो क्या घर खाना खाने की इच्छा नहीं है।

त्रिलोक०—मैं तो घर खाने को मना कर आया हूं।

कैलाश०—अच्छा तो इतना कहकर भोले कैलाश ने २॥) रुपये निकाल कर प्रताप के हाथ में दे दिये।

प्रताप व चन्द्रशेखर बाजार की ओर चले और कैलाश इत्यादि

नाले की ओर चले। वहां पहुँच कर वह लोग वैठ गए और निम्न-लिखित बातचीत करने लगे।

त्रिलोक०—कहिये कोई सच्चिदानन्द का पत्र तो नहीं आया।

कैलाश०—नहीं जी? अब मुझे आशा है वह कभी मुझसे न मिलेगा।

त्रिलोक···यह तो बताओ कि तुम्हारे पिता तुम को जेव खर्च क्या देते हैं?

कैलाश—१) प्रति दिवस तो पिता जी देते हैं और कभी-कभी कुछ माता जी से फटकार लाता हूं।

त्रिलोक०—परन्तु इससे तो काम न चलेगा। कोई और प्रवन्ध भी कर सकते हो।

कैलाश०—और क्या प्रवन्ध हो सकता हैं। परन्तु क्या सब व्यय मुझे ही देना पड़ेगा?

त्रिलोक०—(लज्जा से) हमारी तुम्हारी वात तो एक ही ठहरी। और यह सब निर्धन हैं। और इनके माता-पिता भी दरिद्र होने के कारण इन्हें कुछ नहीं देते अरे अमीरों के यहाँ तो पचासों आदमी पड़े खाया करते हैं, हम तो चार ही हैं। पर्वाह ही क्या है। तुम्हारे पिता तो कृपण हैं उन्होंने बहुतेरा धन जोड़ रक्खा है। कोई घर में व्यय करने वाला भी तो चाहिए।

कैलाश—(अभिमान से) हाँ वैसे तो कोई कमी नहीं। परन्तु मैं इतना धन प्राप्त किस प्रकार करूंगा?

त्रिलोक०—(धीरे से) तुम स्वयं ही ला सकते हो।

कैलाश०—(कान पकड़ कर) न बाबा यह चोरी है। चोरी तो मैं न करूंगा। चोरी करना पाप है।

त्रिलोक०—(मन के भाव को छिपाकर) अरे यार चोरी पाप अवश्य है। परन्तु पाप दूसरों का धन लेना है न कि अपना। तुम्हारे पिता पुराने फैशन के आदमी हैं। वह नहीं जानते कि नवयुवकों के व्यय क्या हैं। किन बातों से मन प्रसन्न रहता है। स्वास्थ्य अच्छा होता है। और बुद्धि की वृद्धि होती है, तुम्हारे पिता क्या समझें कि इस व्यय से तुम्हारी

बुद्धि तीव्र होगी और यदि तुम चाहो कि अकेले ही दिल बहला लो तो यह असम्भव है। इसलिए यदि तुम आनन्द लूटना और साथ ही साथ बुद्धि बढ़ाना चाहते हो तो तुम इस प्रकार का धन प्राप्त करने में संकोच न करो, धन तो तुम्हारा ही है केवल पिता से विना पूछे उठा लेना है इसे चोरी कौन कहता है ! क्या तुमने नहीं सुना कि राजा भोज के समय में चोर संस्कृत पढ़े विद्वान् होते थे। संस्कृत में धर्म भरा पड़ा है। जब ऐसे ऐसे धर्मात्मा चोरी करते थे तो तुमको क्या संकोच और फिर चोरी भी अपनी ही, जो चोरी होती ही नहीं।

विंध्येश्वरी०—निःसन्देह यह चोरी नहीं कहलायी जा सकती, यदि मेरे पिता इतने अमीर होते तो मैं अवश्य ऐसा किया करता !

ग्रंथकर्ता०—ठीक है, गिरहकट चोरों के गवाह।

कैलाश०—हाँ, कोई विशेष हानि नहीं प्रतीत होती तो भी मुझे संकोच होता है।

त्रिलोकचंद कुछ कहना ही चाहता था कि प्रताप व चंद्रशेखर आ पहुंचे। बातचीत को बन्द कर त्रिलोकी उठा और मिठाई लेकर बैठ गया। इस समय आकाश साफ हो गया था। सूर्य देवता अस्त होते-होते मुंह उठाकर झांकने लगे। परेड के उत्तर पूर्व में नाले के आस पास धूप निकल आई। यह पार्टी उठकर नाले के साये में जा बैठी। उन्होंने खाना आरम्भ किया ही था कि पश्चिम से एक घनघोर घटा उमड़ती हुई सारे आकाश को ढकने लगी। बात की बात में अंधेरा हो गया। बिजली चमकने लगी। यह पार्टी तनिक भयभीत हुई कि कहीं वर्षा न होने लगे और हमारी दावत किरकिरी हो जाय। उनका भय ठीक निकला। इन्द्रदेव इनको दण्ड दिए विना न रहे। मूसलाधार पानी पड़ने लगा और परेड इधर से उधर तक जलमय दिखाई देने लगा।

तृतीय परिच्छेद

इन्द्रदेव का कोप दो घण्टे भर वर्षा होने के पश्चात् खाली हो गया। दो घण्टे लगातार मूसलाधार वर्षा हुई। आकाश करीब-करीब साफ हो गया। तारागण आकाश में टिमटिमाने लगे। चन्द्रदेव ने भी दर्शन देने आरम्भ कर दिये। चन्द्र की चांदनी में तारों को हिलते हुए परेड के पानी में अस्थिर प्रतिविम्ब बड़ा मनोहर था और ऐसा प्रतीत होता था कि मानो पृथ्वी रत्नजटित हो रही है। तारों की* झिलमिलाहट ऐसी प्रतीत होती थी कि मानो कठोर हृदय तारे दुःखित पानी से भीगे पथिकों की ओर ठट्टा कर खिलखिला कर हंस रहे हैं। अभी तक पूर्णतया प्रकाश नहीं हुआ था। वहुधा पथिकों का मन पानी से भरे हुए गढ़ों में जा पड़ता था और यात्री वड़े दुःखी होते थे। उदार चित्त परोपकारी चन्द्रमा इनके दुःख को सहन न कर सका और प्रकाश करके उनकी सहायता करने के लिए चीरता फाड़ता उमड़ा चला आने लगा। वज्रहृदय तारागण को भी चन्द्रमा दण्ड देना चाहता है अतः अपने प्रकाश से तारों का तेज ढीला कर दिया है।

जब वर्षा होनी आरम्भ हुई थी, त्रिलोक इत्यादि भागकर कैलाश के कमरे में जा घुसे और शेष मिठाई को समाप्त किया। जब मेह बन्द हुआ तो त्रिलोकचन्द्र ने कहा कि भीगने का वदला निकालना चाहिए। कहने के साथ ही प्रतापसिंह ने जेव में हाथ डाल कर एक सिगरेट का बक्स निकाला और त्रिलोकचन्द्र के हाथ में दे दिया।

त्रिलोक०—तुम्हारे पिता सिगरेट की बू से रुष्ट तो न होंगे ?

कैला०—अवश्य होंगे, कृपा कर यहां न पिओ।

त्रिलोक०—(खड़ा होकर) अच्छा बाहर चलो, वर्षा भी बन्द है।

कैलाश०—वाह ! बहुत खासे। ऐसा तो न होगा।

---

*बहुत धीरे-धीरे हिलते दिखाई दिया करते हैं।

बड़े आग्रह के बाद कैलाशचन्द्र उठा और यह पार्टी थोड़ी देर में पलटन बाजार में दिखाई देने लगी।

त्रिलोकचन्द्र ने सिगरेट का बक्स और दियासलाई कैलाशचन्द्र के सन्मुख पेश की।

कैलाश०—थैंक्यू, मैं तो नहीं पिया करता।

त्रिलोक०—(आश्चर्य से) सो क्यों!

कैलाश०—ऐसे ही, सच्चिदानन्द कहा करता था कि डाक्टर लोग इसको हानिकारक बतलाते हैं, यह जिगर को फूंक देती है।

त्रिलोक०—(खिलखिला कर हंसा) वाह! वाह क्या खूब! क्या सच्चिदानन्द ने कहा था कि डाक्टर लोग इसको बुरा बताते हैं। और तुमने इसको सत्य मानलिया! प्रथम तो शायद कोई डाक्टर ऐसा हो जो सिगरेट न पीता हो और फिर आज कल अंगरेज लोग पदार्थ विज्ञान में अग्रसर हैं। परन्तु क्या किसी अंगरेज को बता सकते हो जो सिगरेट न पीता हो। इस से अधिक और क्या कि सिगरेट आता ही इंगलिस्तान से है। यदि यह हानिकारक होता तो वह लोग क्यों स्वयं पीते और क्यों दूसरों को पिलाते? सच्चिदानन्द का वह कथन सर्वथा निर्मूल था।

कैलाश०—अच्छा कोई लाभ भी है इस से?

त्रिलोक०—क्यों नहीं एक नहीं अनेक हैं। शरीर फुर्तीला और चुस्त रहता है। आदमी कई घण्टे लगातार बैठ कर काम कर सकता है। पाचन शक्ति तीव्र होती है। मुंह का जायका ठीक रहता है। इत्यादि

कैलाश०—तो बहुत से मनुष्य इससे घृणा क्यों करते हैं?

त्रिलोक०—इसका कारण यह है कि वे इसके गुणों से अनभिज्ञ हैं। हाथ कंगन को आरसी क्या। तुम स्वयं तजुर्बा कर के देखो।

कैलाश०—अच्छा लाओ! इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि जन्टिलमैनी का तो यह मुख्य चिह्न है।

इतना कह कैलाश ने सिगरेट सुलगाई और पीछे सबों ने सुलगाई।

वाह रे त्रिलोकचन्द तू बड़ा चतुर है। प्रत्येक कुकर्म के लिये तेरे

पास तर्क उपस्थित है और प्रमाण तो ऐसे देता है कि शास्त्रकारों को भी मात कर दिया। अब तो कैलाश तेरे पञ्जे में है, चाहे जो करवा और कर।

चतुर्थ परिच्छेद

देहरादून के स्टेशन से कर्णपुर जाने की दो राह हैं। एक शहर में से होकर और दूसरी एक बस्ती से बाहर होकर। एक चौराहे पर आकर ये दोनों सड़कें मिल जाती हैं। इस चौराहे से दक्षिण की ओर दोनों सड़कों के बीच में एक छोटा सा रम्य मैदान है। इस मैदान में प्रायः थियेटर की कम्पनियां आकर डेरा डालती हैं। आज कल भी इस मैदान में एक थियेट्रीकल कम्पनी ने जाल फैला रक्खा है। जैसे चूहेदानों में रोटी के लालच में चूहे आ फंसते हैं अथवा जैसे बांसुरी के मधुर आलाप पर मोहित होकर मृगगण अपने को जाल में फंसा लेते हैं इसी प्रकार विषयासक्त मनुष्यसमूह विद्युत् की रोशनी सुरीली तानों और सुनहरी पोशाक से सुसज्जित स्वरूप पर मोहित हो अपने आपको इनके अदृश्य जाल में फंसा कर अपना जीवन भ्रष्ट कर देते हैं।

कैलाशचन्द्र की पिछली घटना को कई दिन व्यतीत हो चुके हैं। इस बीच में कोई घटना ऐसी न हुई कि जिसका वर्णन आवश्यक हो। इस थियेटर को यहां आये एक सप्ताह के लगभग व्यतीत हो चुका है। कैलाशचन्द्र अपने मित्रों के सहित (मित्र यदि वे कहलाने के अधिकारी हों) प्रति दिवस थियेटर में जाता रहा है। आज शनिवार है, आज सब खेल अच्छे होंगे। एक एक्ट्रेस आज नई आई है कैलाश व त्रिलोकी दोनों दो रुपए के स्थान पर बैठे थियेटर देख रहे हैं। त्रिलोकचन्द्र उस एक्ट्रेस की ओर बड़ा ताड़-ताड़ कर देख रहा हैं। जब-जब वाह बाहर आती है, वह कैलाश को दिखाता और कहता हैं "वह देखो क्या गजब की चाल है, और कैसी मोहिनी सूरत है।" यह

कह कर लम्बी आहें भरता और सीने पर हाथ रखता है। कैलाशचन्द्र भी उसका साथ दे रहा है। कलाश को अपनी कुछ खबर नहीं। वह तो एक टक उस सूरत की ओर देखे जा रहा है। जब जब वह बाहर आती है कैलाश बड़ा उचक कर उत्साह से उसकी ओर देखता है। वह भी कैलाश को अमीराना ठाठ में देखकर उसकी ओर विशेष कृपा से देखती है। इस पर तो कैलाश प्रसन्नता से खिल उठता है। वह एक बार आई, दूसरी बार आई, तीसरी बार कैलाश अपने प्रेम को छिपा न सका। त्रिलोकी ने उसे और उत्तेजित किया। कैलाश अपनी कुर्सी पर से कूद पड़ा। अपनी अंगूठी निकाली और उस वेश्या की ओर फेंक कर चिल्लाया, "लो बी जान, यह अंगूठी तुम्हारी नजर है।" उस नटनी ने वह अंगूठी उठा कर पहन ली और मुस्कराकर कैलाश को सलाम किया।

कैलाश जोश में आकर ऐसा कर तो बैठा, परन्तु फिर उसको बड़ा भय व पश्चात्ताप हुआ। उसने विचारा कि यदि पिताजी को ज्ञात हो गया तो बड़ी वेढ़ब होगी। उसने बड़ा दुःखित होकर त्रिलोकचन्द्र से कहा "यार तुमने क्या करा दिया। अब मैं पिता जी को मुख दिखलाने योग्य न रहा।"

त्रिलोक०—(मन ही मन) अब तो बच्चा ऐसा फंसाया है जो याद रक्खे। (प्रकट में) भाई क्यों मुझ पर वृथा दोषारोपण करते हो। क्या इसमें तुम्हारी इच्छा नहीं थी ? तुम्हीं तो प्रथम प्रेमासक्त हुए थे। पिता को ज्ञात हो जायगा, तो क्या कर लेंगे। प्रेमपथ तो दुःखदायी होता ही है।

कैलाश०—(पश्चात्ताप से हाथ मलकर) वाह यार !

कैलाशचन्द्र कुछ और कहना ही चाहता था कि वह चौथी बार फिर निकली। कैलाश सब बातें भूल गया और फिर उसकी ओर लम्बी साँस भर कर देखा।

इसी प्रकार तमाशा समाप्त हुआ, सब लोग बाहर जाने लगे, परन्तु कैलाशचन्द्र व त्रिलोकचन्द्र नहीं [illegible] रहे। जब सब लोग बाहर चले गए

और कैलाश और त्रिलोक अकेले रह गये तो थियेटर के एक सेवक ने कहा, "आप लोग बाहर क्यों नहीं जाते ?"

त्रिलोक०—भाई जाते हैं। जरा यह बतला दो, आज जो नई वेश्या आई है इसका नाम क्या है ?

वह—कटोरीजान या कट्टोजान।

कैलाश०—(धीरे से कान में) क्या उनको बुला सकते हो !

वह—मालिक का हुक्म नहीं है।

त्रिलोक०—कुछ इनाम देंगे।

वह—क्या ?

त्रिलोक०—पांच रुपए, परन्तु जल्दी बुलाओ।

(वह बहुत अच्छा कहकर चला गया)।

कैलाश०—रुपए कौन देगा।

त्रिलोक०—मेरे पास तो हैं नहीं, तुम्हीं को देने पड़ेंगे।

कैलाश—मेरे पास भी नहीं हैं।

त्रिलोक०—तो फिर उसके आने से पूर्व भाग चलो।

कैलाश—भागने को तो मन नहीं चाहता। मैं तो एक अंगूठी दे चुका हूं। अब तुम अपनी चाँदी की सच्चे मोतीवाली अंगूठी दे देना।

त्रिलोक०—(अंगुली दिखाकर) नहीं; मैं तो पहन कर नहीं आया हूं। तुमको याद नहीं। अपनी दूसरी अंगूठी दे दो।

त्रिलोकचन्द्र बड़ा धूर्त्त था। वह आज वास्तव में अंगूठी पहन कर आया था। परन्तु उसने समय से पहले ही निकाल कर जेब में रख ली थी। अन्त में कैलाशचन्द्र ने अंगूठी देना स्वीकार किया।

इतने में कट्टोजान भी आ पहुंची। कैलाशचन्द्र ने अपनी अंगूठी निकालकर उस सेवक के हवाले की जो उसने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार की। कट्टोजान में और इनमें कोई आध घण्टे तक वार्तालाप होता रहा। हम अपनी लेखनी व उपन्यास को उनके गंदे वार्तालाप को लिखकर दूषित नहीं

करना चाहते। जो बात निश्चय हुई संक्षेप लिख दी जाती है जिससे सिलसिला न टूटने पाये।

कट्टोजान आगरा निवासिनी थी। उसने कहा कि अब वह छुट्टी पर जाने वाली है और ६ महीने छुट्टी पर आगरा किनारी बाजार में रहेगी। कैलाशचन्द्र ने तय किया कि कालेज खुलने पर वह आगरे ही पढ़ने जायगा। वहीं दोनों प्रेमियों का मिलाप होगा। त्रिलोक ने भी आगरे जाने की ठानी। निशानी के तौर पर कैलाशचन्द्र ने अपना हार उतार कर कट्टोजान के हवाले कर दिया।

कैलाशचन्द्र व त्रिलोकचन्द्र दोनों ही परीक्षा में पास हो गए थे। उनके और साथियों में से विन्ध्येश्वरी भी पास हो गया था। प्रतापसिंह पास न हो सका। चंद्रशेखर पहले ही पढ़ना छोड़ चुका था।

जब कैलाश व त्रिलोक थियेटर से बाहर निकले तो प्रातःकाल के तीन बजे थे। दोनों अपने-अपने घर को चले गये।

पंचम परिच्छेद

उस रोज से कैलाश की अवस्था में पृथ्वी-आकाश का अन्तर पड़ गया। खाना-पीना उसको बुरा लगता था। दोस्तों से बात-चीत में उसका मनोरंजन न होता था। अब तो वह जगतमाया के जाल में फंस गया। जगतमाया, तुझे बड़ी शक्ति प्राप्त है। अब तो कैलाशचन्द्र तेरा शिकार बन गया।

एक दिन सायंकाल को अकेला टहलने निकला। अपने विचार में मस्त बहुत दूर निकल गया। चलते-चलते वह एक जंगल में पहुंचा। और वहां एक चट्टान पर बैठकर कुछ गुनगुनाने लगा। सायंकाल की शीतल वायु उल्टा उसके चित्त को जलाती थी। पुष्पों की सुगंध उसके मन को प्रसन्न न कर सकती थी। चिड़ियों की मनोहारिणी चहचहाहट उसको दिमाग बिगाड़ने वाला शोर प्रतीत होती। उसको तो अपनी

प्यारी की ही धुन थी और वह धुन उसी की बुद्धि की शुद्धता के लिए धुन थी। इस प्रकार बैठे-बैठे कैलाशचन्द्र को बहुत समय हो गया। कभी वह व्याकुल होकर उठ खड़ा होता और फिर हाय कह कर बेचैनी से बैठ जाता।

इतने में उसके पीछे से एक आवाज आई। किसी ने उसको आवाज दी—"कैलाशचन्द्र।"

वह चौंका और विस्मित होकर पीछे फिर कर देखा तो कोई दिखाई न पड़ा। कैलाशचन्द्र उठ खड़ा हुआ और जोर से चिल्लाया,—"कौन मुझको बुलाता है ?"

आवाज आई—"हम।"

कैलाशचन्द्र लाख कोशिश करने पर भी किसी आदमी की सूरत न देख सका।

कैलाश ने फिर कहा—तुम कौन हो और कहाँ हो।

आवाज—यह हम नहीं बतला सकते क्योंकि हमको तुम जानते नहीं और स्थान इसलिए नहीं बतला सकते कि हम तुम्हारी नाईं स्थूल शरीर नहीं रखते।

कैलाश—तो क्या तुम भूत हो ?

आवाज—नहीं।

कैलाश—तो कुछ हो भी। तुम्हारा मुझसे क्या सम्बन्ध ?

आवाज—अच्छा बतला ही दें, हम हैं यमराज के दूत।

कैलाश—(डर कर) आप मुझे क्यों पुकारते हैं ?

आवाज—(हँसकर) हम तुम्हारे पापों का दण्ड देना चाहते हैं।

कैलाश—(भयभीत होकर) मैंने कौन-सा पाप किया है !

आवाज—(क्रोध से) दुष्ट ! तूने कोई पाप नहीं किया ?

कैलाश—(गिड़गिड़ाकर) जी ई ई ई को ई ई ई नहीं ईं ईं ई···।

आवाज—अहह ! अबे, तूने कोई पाप ही नहीं किया। अच्छा क्या डर है। हमारे स्वामी तुमसे मिलना चाहते हैं। और वह यहाँ से एक

मील पर एक मन्दिर में बैठे हैं। जिसका पता यदि तुम चाहो तो हम बता सकते हैं।

कैलाश—यदि मैं न जाऊं तो तुम्हारे स्वामी मेरा क्या कर लेंगे ?

आवाज—(क्रोध से तड़ककर) अबे पाजी, तू हमारे स्वामी को नहीं जानता। हमारा स्वामी सब दुष्टों को दण्ड देने वाला न्यायकारी है। तू पापी है, स्वामी तुझसे रुष्ट हैं और तुझको दण्ड से बचने का उपाय बतलाना चाहते हैं। यदि तू न जायगा तो हम तुझको बलात्कार से ले जायेंगे। और यदि ऐसे भी न चला तो हम तेरे को मार कर तेरे जीव को पकड़ ले जायेंगे। तू यदि हमारी सामर्थ्य को देखना चाहता है तो पीछे की ओर देख।

कैलाशचन्द्र ने पीछे को देखा तो उसकी कनपटी पर एक पत्थर इस जोर से आकर लगा कि उसका सिर घूम गया। और वह हाय मैया ! कह कर सिर पकड़ कर बैठ गया और बैठते ही बेहोश हो गया। कोई एक घण्टे तक वह बेहोश पड़ा रहा। और जब उसकी आँख खुली तो उसने अपने आपको एक मन्दिर में पड़ा पाया।

षष्ठम परिच्छेद

यह मंदिर बहुत पुराना बना हुआ है। दीवारें टूटी-फूटी और मंदिर गन्दा पड़ा है। न इसमें कोई मूर्ति है न कोई पुजारी। बाहर एक बड़ा चूने का नादिया बना हुआ है। अन्दर दीवार पर एक भयानक विचित्र तस्वीर सेंदुर और स्याही से बनाई हुई है। नीचे से हनुमान् और ऊपर से राक्षस माथे में दो सींग और नाक बड़ी लम्बी घुटनों तक लटक रही थी : जीभ भी कम से कम एक हाथ लम्बी थी। पैरों से कमर तक लाल कमर से सिर तक काला। काला मुंह नीली आँख। मुंह खुला हुआ था मानो कुछ कहना ही चाहती है। इस दीवार को तस्वीर ने बिलकुल ढक रखा था। एक बात आश्चर्यजनक थी कि यह दीवार बिल्कुल नई

मालूम होती थी। कम से कम यह मूर्ति तो नई बनी हुई थी।

कैलाशचन्द्र बड़ा डरा और उठकर वाहर को जाने लगा, इतने में ही आवाज आई—खबरदार !

कैलाशचन्द्र भय से कांप उठा। उसने घूमकर अन्दर की ओर देखा तो फिर किसी ने कहा—इधर आ वे !

कैलाशचन्द्र के शरीर में भय के मारे थर-थरी उत्पन्न हो गई। उसने भागना चाहा परन्तु भय ने उसे भागने न दिया। काल की विकराल मूर्ति उसकी आंखों में घूमने लगी। वह अन्दर जाये विना न रह सका। अन्दर जाकर वह मूर्ति के सामने सिर पकड़ कर वैठ गया। मूर्ति में से आवाज आई क्यों वे, तू अभी तक हमारे स्वामी की सामर्थ्य को नहीं समझा और अब भी भागने की इच्छा है।

कैलाशचन्द्र सहम गया और कुछ न बोल सका। वड़ी देर में कैलाशचन्द्र ने साहस किया और धीरे से डरते-डरते बोला—मुझे यहाँ क्यों लाया गया है ?

आवाज—जो हमारे स्वामी कहें तुमको सुनते रहना होगा. और उस पर विचार कर अमल करना होगा। यदि तुम ऐसा न करोगे अथवा यहाँ से भाग जाने का उद्योग करोगे, तो उसी शक्ति से जिसका साधारण स्वाद तुम चख चुके हो तुम को दण्ड दिया जाएगा। अतएव तुमको उचित है कि चुपचाप जो हमारे स्वामी कहते जायें, सुनते जाओ।

थोड़ी देर पश्चात् मूर्ति के मुंह से सुरीली आवाज आनी प्रारम्भ हुई। कैलाशचन्द्र ने डरते-डरते शब्द-शब्द सुनना आरम्भ किया।

मूर्ति ने यह कहा...

अभागा जो मनुष्य जीवन वृथा यों ही गंवाता है।
विकट यमराज के कर से सदा वो दण्ड पाता है॥
गंवाता जन्म ऐवों में पला संगत में मूर्खों की।
उसे कोई कुटुम्बी भी वचाने को न आता है॥
बढ़ाकर प्रीत यारों से खिलाता माल वेश्याओं को।

सदा धन धूरी दुष्टों को जो दावत में उड़ाता है ॥
समझता मित्र शत्रु को बुरा लगता भला शिक्षक ।
उसे फिर लाख उद्यम से न मानुष जन्म पाता है ॥
विमल यश में पिता के जो कभी बट्टा लगाएगा ।
नरक रूपी भँवर में वह सदा गोते लगाता है ॥
कहैं यमराज ऐसा जन कभी होता नहीं आजाद ॥
करत है खुदकशी वा जेल में जीवन बिताता है ॥

सावधान मूर्खो चेतो !

अहह यह कौन बैठा है ! क्या कैलाशचन्द्र ठीक वही है । अरे मूर्ख क्यों अपने कुल की कीर्ति में बट्टा लगाने लगा है । बेसमझ तुझको इतना ज्ञान नहीं कि कौन तेरा मित्र और कौन तेरा अमित्र है । तू जिस त्रिलोकचन्द्र को अपना मित्र समझता है, वह तेरा पक्का शत्रु है । जिस सच्चिदानन्द को तू अपना शत्रु समझता है वह तेरा सच्चा मित्र है । अरे आँख खोलकर देख तू दिन प्रति दिन नवीन-नवीन कुकर्मों में फंसा जा रहा है । चोरी, सिगरेट, वेश्यागमन इत्यादि-इत्यादि । यह सब किसके कारण उसी दुष्ट त्रिलोकचन्द्र के कारण । अरे, अज्ञानी यह तो बता तूने त्रिलोकचन्द्र में कौन सी बात मित्रता की देखी और सच्चिदानन्द में कौन अमित्रता की । तू विषयासक्त है पापी है अज्ञानी है, चोट्टा है, झूठा है । तुझको वो ही अच्छा लगेगा, जो तुझको पाप की सलाह दे । क्यों कि यह जगतमाया है । पाप का आकर्षण धर्म से अधिक होता है । मूर्ख अब भी समझ जा और सद्धर्म पर आजा । नहीं जानता मैं कौन हूं । मेरे भय से पृथ्वी कांपती है और अम्बर डोलता है । मेरा नाम रुद्र है । मैं सब के पापों को दण्ड देता हूं । (कड़ककर) भस्म कर दूंगा नहीं तो प्रतिज्ञा कर कि मैं अब जाकर इस मन्दिर का वृत्तान्त किसी को न सुनाऊंगा ! जाकर त्रिलोकचन्द्र इत्यादि का साथ छोड़ दूंगा । कट्टोजान से कोई सम्बन्ध न रक्खूंगा । सच्चिदानन्द को मित्र समझूंगा । बस, यह स्वीकार है या नहीं ?

मारे भय के कैलाश के प्राण शुष्क हुए जा रहे थे। वह सोचता था यह क्या माया है जो दीवार बोलती है। इसमें अवश्य यमराज का प्रवेश हुआ है। दीवार पर की मूर्ति और भी डराती थी। उसके मन की विचित्र दशा थी। भय, आश्चर्य, लज्जा और संकोच ने उसे जकड़ रक्खा था। उसने यमराज के अन्तिम प्रश्न को स्वीकार किया और डरते हुए कहा—मुझे स्वीकार है!

यमराज—अच्छा जाओ, इस समय आठ बज चुके हैं शीघ्र गृह पहुंचो। पर खबरदार जो इस मन्दिर की तलाशी लेने का उद्योग किया। तू मेरे एक दूत का चमत्कार देख चुका है। यदि मैं क्रुद्ध हो गया तो तू क्या तेरा बाप भी इस संसार में न रह सकेगा। जाओ, शीघ्र मन्दिर से निकल भागो।

कैलाश—बहुत अच्छा, परन्तु पथ तो ज्ञात नहीं।

यमराज—देखो इस मंदिर से बीस कदम दक्षिण की ओर एक पगडण्डी मिलेगी उस पर पश्चिम की ओर चले जाना। वह तुमको कर्णपुर पहुंचा देगी। यह कह कर मूर्ति चुप हो गई। कैलाशचन्द्र ने गनीमत समझा और मन्दिर में से निकलकर ऐसे भागा जैसे झाड़ी में से खरगोश।

सप्तम परिच्छेद

पाठकगण! शायद आप विचारते हों कि चलो उपन्यास का अन्त हुआ। कैलाशचन्द्र सुधरने की प्रतिज्ञा कर चुका, दुष्टों का संग छुटा, संतों का संग हुआ, क़िस्से का अंत हुआ, परन्तु ऐसा नहीं है जगत माया के नियम विचित्र हैं जिसे आप अन्त समझते हैं वह एक नूतन रहस्य का आरम्भ है। पाठकगण क्या आप विचारते हैं कि कैलाशचन्द्र ने अपनी प्रतिज्ञा निभाई। विचार तो नहीं है न जगतमाया ही इस की साक्षी देती है। अच्छा देखिए, जगत माया क्या-क्या करती है!

प्रातःकाल का सुहावना समय है। सूर्यदेव अभी पूर्णतया उदय

नहीं हुए हैं। कैलाशचन्द्र अपने कमरे में वैठा कुछ सोच रहा है। घर के वालक उसके विचार में वाधा डाल रहे हैं। वह शान्तिपूर्वक एकान्त में कुछ विचारना चाहता है। परन्तु गृह के वच्चे उसको तंग कर रहे हैं। तंग आकर उसने कमरे का दरवाजा वन्द किया और वाहर को चल दिया। जिस कोठी में थिएटर वाले ठहर रहे थे उसके समीप ही एक चौराहे की एक छोटी दीवार पर वैठ कर फिर चिन्ता में निमग्न हो गया। उसको वैठे थोड़ी ही देर हुई थी कि दूर से त्रिलोकचन्द्र विन्ध्येश्वरी-प्रसाद, प्रतापसिंह और चन्द्रशेखर आते दिखाई पड़े। थोड़ी देर में वह चारों पास आ पहुंचे। वह चारों भी उस दीवार पर वैठ गए।

विन्ध्येश्वरी···कहिये वावू साहव आप सायंकाल कहाँ खिसक गये थे, जो कुओं में जाल डलवाए से भी नहीं मिले ?

और आज इस जगह वे मौके किस चिन्ता में निमग्न हो कहीं घर से लड़कर तो नहीं भाग आए हो ?

कैलाश०—(इस कुसमय की हंसी से चिढ़कर) कल तो मैं टहलने चला गया था।

त्रिलोक०—ऐसे अकेले किधर चले गए थे ! और आए भी वड़ी देर में ! कहां तक गए थे ! क्या करते रहे !

कैलाश—क्षमा कीजिए, मैं वह नहीं वतला सकता।

त्रिलोक०—(आपस में कानाफूसी करके) (धीरे से) इस का कारण तो वतलाओ।

कैलाश०—मैं ऐसा न करने की प्रतिज्ञा कर चुका हूं।

प्रताप०—किस के सन्मुख !

कैलाश०—मैं यह भी नहीं वतला सकता।

त्रिलोकचन्द्र इत्यादि आपस में कानाफूसी करने लगे। कोई कहता था कि सच्चिदानंद का पत्र आया होगा। कोई कहता था शायद पिता ने मारा हो, इतने में त्रिलोकचन्द्र ने धीरे से कान में कहा वस हम समझ गए। कट्टो जान को अकेले रखना चाहते हैं। इसीलिए हम से बिगाड़ना

चाहते हैं। परन्तु यह ज्ञात ही नहीं कि यद्यपि रुपया लाला साहब का होता है परन्तु कट्टोजान को मैं ही देता हूं और कट्टोजान इनसे दिखलाने का प्रेम करती हैं उसका वास्तविक प्रेम मुझसे है।

इसी प्रकार का वर्तालाप हो रहा था कि कोठी की खिड़की खुली और कट्टोजान ने इशारे से कैलाशचन्द्र को अपने पास बुलाया। कैलाशचन्द्र ने यह सब कुछ देखा परन्तु प्रतिज्ञा भंग होने के भय से न वह गया और न उसके इशारे का उत्तर दिया। कट्टोजान विस्मित हुई, उसने सोचा शायद यह आय का सिलसिला जाता रहे। वह नीचे उतर आई और मटकते मटकते कैलाशचन्द्र के पास आकर बोली :—

कट्टो—क्यों साहब खफा तो नहीं हो गए, फिर मेरा बुलाना आपको गवारा क्यों न हुआ।

इतना कहकर कट्टो ने नखरे से कैलाशचन्द्र का हाथ पकड़ लिया।

वाह वाह वाह वाह ! वाहारी जगत् माया धन्य धन्य ! तुझ से क्या नहीं हो सकता। तू बड़े बड़े कट्टर धर्मात्माओं को ऐसा उल्लू बनाती है कि उन्हें कहीं का भी नहीं छोड़ती। जब योगी लोग भी तेरे फन्दे से न बच सके तो बेचारा कैलाश किस खेत की मूली है ? उसकी सामर्थ्य कहां कि तुझको जीत सके। तेरी महिमा अपरम्पार है। तेरी शक्ति की बलिहारी है। हाय हाय तनिक तो कैलाशचन्द्र पर कृपा की होती !

जैसे विद्युत् का हैण्डल पकड़ने से शरीर में बिजली दौड़ जाती है इसी प्रकार कट्टो जान के हाथ पकड़ते ही कैलाश चन्द्र की काया पलट गई। वह सब प्रतिज्ञा भूल गया। इसके हृदय में जो अच्छे भाव अंकुरित हुए थे वह प्रेम की बाढ़ में बह गये। वह सब प्रतिज्ञाओं के उल्लंघन करने को उद्यत हो गया। वह उठ खड़ा हुआ और बोला बी जान माफ करना, एक ऐसी ही बात हो गयी थी। चलिए कोठी में बैठ कर अपनी खता का कारण बतलाऊँगा। इन पाँचों को लिए हुए कट्टो अपने कमरे में गई।

बतलाने की आवश्यकता नहीं कि कैलाशचन्द्र ने सारा वृत्तान्त कह

सुनाया। हम यमराज का वृत्तान्त दोहरा कर अपने पाठकों का समय नष्ट करना उचित नहीं समझते।

इसके सुनने के उपरान्त इन पाचों नवयुवकों ने निश्चय किया कि उस मन्दिर में जाकर इस वात का रहस्य जानें।

अष्टम परिच्छेद

आज कैलाशचन्द्र आगरे जाने की तैय्यारी कर रहा है। कल यह लोग उस मन्दिर पर गए थे। जव यह पार्टी आधे दूर ही गई थी कि पीछे से खांसने का शब्द आया, यह लोग पीछे लौटे परन्तु किसी को न पा सके। इस पर कैलाशचन्द्र कांप उठा। उसने सोचा कि अवश्य यमराज ही खांसे थे। परन्तु त्रिलोकचन्द्र के वहुत दिलासा दिलाने पर वह चला ही गया। जव यह लोग मन्दिर में पहुंचे तो कैलाशचन्द्र के वतलाने पर सवको वड़ा आश्चर्य हुआ कि वह स्थान जहां पहिले मूर्ति थी सर्वथा शून्य था, न वह दीवार उतनी नई प्रतीत होती थी वरन् मैली कुचैली पड़ी थी।

कैलाश वड़ा विस्मित हुआ कि यह दीवार पुरानी कैसे हो गई! इन सबों ने घण्टों सर मारा परंतु कुछ परिणाम न निकला। अन्त में जव सन्ध्या हो गई और धीरे धीरे तम की वृद्धि होने लगी तो यह लोग लौटे। मन्दिर से वाहर निकलते ही इन्होंने एक कहकहे का शब्द सुना। अन्धकार में दुर्बलात्मा डरा ही करते हैं। यह लोग भयभीत होकर इधर उधर देखने लगे कि इतने में एक और भी खिलखिला कर हंसने का शब्द आया। अब इन लोगों के साहस ने इनका साथ न दिया और यह सब वहां से पत्ता तोड़ भागे।

पाठक गण! हमें क्षमा करें हम मन्दिर का रहस्य इस स्थान पर लिखने में असमर्थ हैं। परन्तु इतना कह देना चाहते हैं कि कैलाशचन्द्र पर इस घटना का स्थायी रूप से प्रभाव न पड़ा।

पाठको ! जगत् माया वड़ी प्रवल है। इसके नियमों के वंधन में आकर कैलाशचन्द्र वहुत दुर्व्यसनों में व्यस्त हो चुका है। अव तक जो हम इसके प्रत्येक दुर्गुण में फंसने का सीन देते रहे हैं उसका उद्देश्य त्रिलोकचन्द्र की उलझाने वाली वातें सुनाना है। अव दुर्गुणों में फंसाने के हेतु त्रिलोकचन्द्र को अपनी लच्छेदार वातों की आवश्यकता नही पड़ती है। आजकल तो कैलाशचन्द्र के ऊपर काम का भूत सवार है जो प्रेम के हण्टर मार मार कर कैलाशचन्द्र को दुर्गुणों में ढकेल रहा है। जहां कट्टो जान से जामे मय (मदिरा का प्याला) कैलाशचन्द्र को दिया तो कैलाशचन्द्र उसको निःसंकोच अमृतवत् मानकर पी गया। जहां कटोरीजान ने मदिरा (शराव) के नशे में मस्त कैलाशचन्द्र को रकेवी में मांस दिया तो वह निर्लज्जता का अवतार वन कर कुल मर्यादा छोड़कर कुत्ते गिद्धों कौवों की नांई चट कर गया। सचमुच कैलाशचन्द्र इन दुर्व्यसनों में ग्रस्त हो चुका था इसके कुमित्रों की अव खूव वनी ! चन्द्रशेखर को मन मानी मद्य मिल जाती विंध्येश्वरी को मन भरकर मांस मिल जाता और त्रिलोकचन्द्र तो पचरंगी में खूव मस्त रहते।

इन दुर्व्यसनों से कैलाशचन्द्र की एक महीने में जो दशा हो गई उस का वर्णन वड़ा करुणामय है। परन्तु उपन्यास-लेखकों को सव कुछ लिखना ही पड़ता है चाहे वह उनकी इच्छा के विरुद्ध भी क्यों न हो। अस्तु, हम भी दिल सम्हाल कर लिखते है आप भी कलेजा थाम कर सुनिये !

वह कैलाशचन्द्र जो कभी बड़ा बलिष्ठ था, आज ऐसा दुर्वल हो गया है कि तनिक देर वैठने से कमर दुखने लगती है, मस्तक में दर्द होने लगता है, सर घूमने लगता और हार कर लेटना पड़ता है। कैलाशचन्द्र का चन्द्र समान प्रसन्न करने वाला उज्ज्वल वर्ण अव अति व्यभिचार के कारण स्याह और पीला हो गया है। वह कैलाशचन्द्र की लाल डोरों वाली मनोहर आंख जो कभी मृगशावकों को भी लज्जित करती थीं अव पहिली-सी नहीं रही। अव तो वह छोटी होकर चक्षुकूप में जा घुसी हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वह कदाचित वाहर नहीं आ

सकतीं और अन्दर से ही इस अनित्य संसार को हसरत भरी दृष्टि से देख रही है उन चक्षुओं को जो अपनी तीव्रता में वाज की आंखों को चैलंज देने का साहस करती थीं अब चश्मे की आवश्यकता होने लगी है और वह कई बार अपने पिता से इस विषय में कह भी चुका है। कैलाशचन्द्र का उभरा हुआ सीना अब शोक से अन्दर को धसना चाहता है। कैलाशचन्द्र की मेधा शक्ति अब ठीक काम नहीं देती : यह सब क्यों न हो। ब्रह्मचर्य का अपमान करने वाले मूर्खों के विषय में और क्या आशा हो सकती है।

क्या आप समझते हैं कैलाशचन्द्र के कुटुम्बी इसकी ओर से निश्चिन्त वैठे हैं। ? नहीं ऐसा नहीं है किन्तु इसके विरुद्ध कैलाश के पिता बहुत सीधे हैं। परन्तु कैलाशचन्द्र के चाचा लक्खीमल करोड़ीमल जैसे सीधे नहीं हैं वह वड़े तीव्र बुद्धि और नीति परायण हैं। उनको कैलाश का दिवस प्रति दिवस दुर्वल होते जाना वहुत खटकता रहता है। एक दिन की घटना है कि कैलाशचन्द्र अपनी प्रेम पात्र नायका की आवश्यकतानुसार अपने पिता के कोट से ताली निकाल कर उनके बक्स में से कुछ नोट निकालना चाहता था जैसा कि वह कई बार इससे पूर्व भी कर चुका था इसी समय में उसके चाचा आ पहुंचे। उनके वहुत पूछने पर भी इसने न वतलाया कि वह रुपया किस व्यय के हेतु निकालता था उसके चाचा ने उसको क्षमा कर दिया और उसकी सहस्रों शपथों से सन्तुष्ट हो गये।

हम इस परिच्छेद में सभी आवश्यक बातें लिख डालना चाहते हैं जिससे हम अगले परिच्छेद में अपनी मनोरंजक कथा पुनरारम्भ करें और प्रत्येक परिच्छेद मे ऐसी वातें लिखकर पाठकों के मनोरंजन में बाधा न डालें।

आप विचारते होंगे कि कैलाशचन्द्र के पास इतना धन कहां से आया ! हम आपको वतलादें कि कैलाशचन्द्र ने तीन बार पिता की चोरी की अपनी अंगूठी के विषय में उसने विख्यात कर दिया कि किसी ने चुराली एक बार माता का सुवर्ण कंगन चुराकर बेचा और एक बार

अपनी चाची की हीरा जटित अंगूठी चुरा कर वेची परन्तु यह किसी को ज्ञात न हुआ।

नवम परिच्छेद

सायंकाल का समय है। आकाश मेघ समूह से आच्छादित है। कभी एक आध बूंद भी पड़ जाती है। ५ वज चुके हैं। इस समय हम आगरे के किनारी वाजार में अपने पाठकों को ले चलते हैं।

कैलाशचन्द्र आगरे पहुंच चुका है। त्रिलोकचन्द और विंध्येश्वरी प्रसाद भी आगरे आये हैं। हम किनारी वाजार में तीन नवयुवकों को टहलता देखते हैं। पाठक पहचानते होंगे यह त्रिलोकचन्द्र व कैलाशचन्द्र और विंध्येश्वरी प्रसाद हैं यह तीनों किनारी बाजार की एक गली में एक मकान के दर्वाजे पर जाकर ठहरे। त्रिलोकचन्द्र ने कुण्डी खुटखुटाई और किसी ने अन्दर से कुण्डी खोल दी। कट्टोजान इन तीनों को लिए हुए अपनी वैठक में गई और तीनों को नखरे से फर्श पर बिठलाकर आप पलंग पर लेट गई। और करवट बदल कर उनसे हँस-हँस कर बात चीत करने लगी।

हम इनकी प्रेम भरी स्वार्थ जड़ी काम घड़ी और लोभ नड़ी बात-चीत लिख कर समय नष्ट करना उचित नहीं समझते वह इनके काम से स्वयं ज्ञात हो जायगा तह तीनों कट्टो के पास से कोई नौ बजे लौट कर आये और तीनों त्रिलोकचन्द्र के कमरे में वैठ कर वार्तालाप करने लगे।

कैलाश०—अच्छा तो कट्टोजान के लिए सौ रुपये का क्या प्रबन्ध किया जाएगा।

विंध्येश्वरी०—सेठ जी आप ही देंगे।

त्रिलोक०—वाह! सेठ जी तो बहुत व्यय कर चुके हैं अब आप भी तो कुछ दीजिए। यह हरामखोरी तो उचित नहीं।

विंध्येश्वरी०—देखो जी ! तनिक जिह्वा संभाल कर बातें करो, कभी जरा देर में सारी हरामखोरी निकाल दूं । दूसरों को तो कहते हो कुछ तुम भी दोगे ?

त्रिलोक०—(क्रोध से) क्यों नहीं देंगे । अवश्य देंगे, हम तेरी तरह हरामखोर नहीं हैं ।

विंध्येश्वरी०—चुप बे ? तू-तड़ाक न कर, नहीं तो ठीक बना दूंगा । हरामखोर तेरा बाप ।

त्रिलोक०—बाप तक पहुंचेगा तो मारते-मारते सवेरा कर दूँगा ।

विन्ध्येश्वरी०—अबे, हम तेरे बाप के दबे नहीं बसते जो तुझ से डरें, जो कुछ तुझ से हो करले, हम तो कहेंगे तू हरामजादा ! तेरा बाप हरामजादा !

त्रिलोक०—मैं फिर कहता हूं कि अधिक न बक नहीं धुन डालूंगा ।

विंध्येश्वरी०—अबे तेरे जैसे सैकड़ों देखे हैं ! तू किस खेत का बथुआ है । एक चाँटा लगाया तो मुंह फिर जायगा ।

त्रिलोक०—सबे बक मत कभी मुझे हाथ छोड़ना ही पड़े ! मुझे क्रोध आ गया तो कच्चा भून कर खा जाऊंगा ।

विंध्येश्वरी—अबे भून कर खाइयो अपनी अम्मा कट्टोजान को ।

त्रिलोक०—(कड़क कर) बस खबरदार, नहीं तो मार डालूंगा । निकल जा मेरे कमरे से ।

विंध्येश्वरी—अबे धौंस काहे की दिखाता है ! मैं थूकता कब हूं तेरे कमरे में !

इतना कहकर विंध्येश्वरी प्रसाद क्रोध में भरा हुआ कमरे से बाहर निकल गया । कुछ देर तक बैठे रहने के बाद त्रिलोकचन्द्र बाहर गया और मुंह धोकर लौट आया । त्रिलोकी ने मुस्करा कर कैलाशचन्द्र से कहाः—

त्रिलोक०—देखो ! कैसी हरामखोरी पर कमर बांधी है ! भला

हमारी तुम्हारी तो एक ही बात ठहरी, परन्तु यह लोग क्यों मुफ्त मजा उड़ायें !

कुछ देर चुप रहने के पश्चात कैलाशचन्द्र बोला—

कैलाश०—भाई यह तो ठीक नहीं, मैं कहाँ तक व्यय करूं ! मैं दो अंगूठी दे चुका, एक तोड़ा दे चुका, और कोई चार हजार रुपए दे चुका। अब तुम्हारी बारी है, अब मुझमें सामर्थ्य नहीं है।

त्रिलोक०—यह तो ठीक है। परन्तु नाम भी तो तुम्हारा ही है और कट्टोजान भी तो तुम पर न्यौछावर है।

कैलाश०—नहीं साहब, मैं ऐसे नाम नहीं करूंगा। मैं अभी पिता से २००) सौ रुपये लाया था। यदि मैं फिर १००) रुपया मगाऊं तो पिता क्या कहेंगे ! मैं अब ऐसा कदापि न करूंगा। तुमने तो मुझे कंगाल कर दिया।

त्रिलोक०—प्यारे दोस्त ! (इतना कहते-कहते त्रिलोकचन्द का गला भर आया और वह हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ा कर कहने लगा) इस बार तो तुम और निबाह लो। अबकी बार में अवश्य प्रबंध कर लूंगा। (इतना कहकर त्रिलोकचन्द ने रोते-रोते कैलाशचन्द के पैरों में सर रख दिया) कैलाशचन्द का हृदय इतना कठोर न था कि त्रिलोक की इस अवस्था से न पिघलता। कैलाशचन्द ने दुःखी होकर कहा उठो ! अधीर क्यों होते हो ! इस समय मैं ही प्रबंध कर दूंगा। त्रिलोकचन्द ने सर उठाया आंखें पोंछी और रोना बन्द किया।

कैलाश०—अच्छा यह तो बताओ मैं किस प्रकार रुपए का प्रबन्ध करूं ?

त्रिलोक०—(कुछ धीरे से) कल-परसों की छुट्टी है, चलो देहरादून चलें। जहाँ तुम्हारे पिता रुपए रखते हैं वह स्थान तो तुमको ज्ञात ही होगा। वहां से सौ रुपए निकाल लेना। यदि तुमको संकोच हो तो मैं निकाल लूंगा !

यह सुनकर कैलाशचन्द चुप हो गया। त्रिलोक समझा बस मामला ठीक है। कहावत के अनुसार 'मौनमर्द स्वीकारी'।

सज्जनगण ? अब ! टिप्पणी करने की कोई आवश्यकता नहीं कि जगतमाया कैसी प्रबल है। मित्रों को एक पल में शत्रु और शत्रुओं को एक क्षण में मित्र बना देना उसका साधारण कार्य है।

जगत सागर में न जाने कितनी मित्रतारूपी नौकायें दुर्व्यसन की आंधी से स्वार्थ की चट्टान पर टकरा कर समाधिस्थ हुई हैं। विंध्येश्वरी की मित्रता का तो अंत हो गया।

देखिए कैलाश और त्रिलोक में कब तक निभती है।

दशम परिच्छेद

पिछली घटना के उपरान्त त्रिलोकचन्द और कैलाशचन्द ने तो देहरादून को प्रस्थान किया और विंध्येश्वरी इनसे रुष्ट हो अपनी धुन में लगा।

हम अपने पाठकों को देहरादून ले चलते हैं। सायंकाल का सुहावना समय है। सूर्य भी सुनहरी किरणें मंसूरी पर्वतीय कोठियों के शीशों पर पड़ रही हैंजो दिन में सितारों की नाईं चमक रहे हैं। ऐसे समय में ५ बजे वाली गाड़ी यात्रियों को लादे धुआं उड़ातीं स्टेशन पर आ पहुंची। कैलाशचन्द त्रिलोकचन्द को लिए अपने घर को चला। घर आकर उसको ज्ञात हुआ कि उसके पिता विशूचिका है ग्रस्त हैं कैलाग बड़ा दुखित हुआ। वह अपने पिता के पास गया और प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त करने के पश्चात् उनके पास बैठ गया। त्रिलोक भी वहीं बैठा रहा। कुछ देर पश्चात त्रिलोकचंद समेत कैलाश वहां से उठ आया। बाहर आकर कैलाश बोला—

कैलाश०—मित्र पिता जी अस्वस्थ हैं, अब ऐसा न करना चाहिए।

त्रिलोक०—वाह मित्र ! यह तो बड़ा अच्छा अवसर है। सारे कुटुंबी

उनके पास रहते हैं। मुझे अच्छा अवसर मिलेगा। हां ! रुपया कहाँ रहता है।

त्रिलोकी ने बात को बड़ी चतुरता से टाला। कैलाशचन्द ने अन्त में उसकी बात मान ली और उसको रुपये रखने का स्थान बतला दिया। रात को संदेह मिटाने के लिए कैलाश ने अपनी चारपाई पिता के पास बिछवाई और रात भर वहां से न टला। बतलाने की आवश्यकता नहीं कि चोर अवसर पाकर अपना काम कर गया।

प्रातःकाल लख्खीमल ने जाकर देखा तो बौक्स का ताला टूटा पड़ा हुआ है। पड़ताल की तो ज्ञात हुआ पाँच सौ रुपये की चोरी हो गई। घर में चोरी का शोर मच गया। यह सुनकर कि चोरी पाँच सौ रुपये की हुई कैलाशचंद का हृदय बड़े वेग से उछलने लगा। कैलाशचंद को यह सुनकर बड़ा क्रोध आया। उसने चुप रहना ही ठीक समझा। संक्षेप में यह है कि अगले दिवस ही कैलाशचंद ने दो दिन की छुट्टी का बहाना करके आगरे को प्रस्थान किया। त्रिलोकचंद इसको देहरादून के स्टेशन पर मिल गया था।

कैलाशचंद ने त्रिलोक से पूछा—

"क्या तुम पांच सौ रुपए लाए हो ? वहां तो पाँच सौ की धूम हो रही है" उत्तर मिला "नहीं मैं तो सौ रुपये ही लाया हूं, या तो किसी और ने चुरा लिए होंगे अथवा उन्होंने मिथ्या बात फैलादी होगी।' इतना कह कर त्रिलोक ने एक सौ रुपये का नोट दिखाया।,

परन्तु कैलाशचंद को उसका विश्वास न हुआ।

सायंकाल को यह आगरे पहुंचे और सीधे किनारी बाजार में कट्टोजान के मकान पर गये तो मकान का दरवाजा बन्द पाया। सैकड़ों आवाजें दीं पर अन्दर से किसी ने किवाड़ न खोले। लाखों यत्न किये पर कोई उत्तर न पा सके। तब वह इस प्रकार वार्तालाप करने लगे...

त्रिलोक०—कट्टोजान कहाँ चली गई।

कैलाश०—कहीं जाना तो न चाहिए था, कौन जाने कहाँ चली गई !

त्रिलोक०—चलो इस समय टहलने चलें, फिर किसी समय आयेंगे।

कैलाश०—अच्छा चलेंगे, परन्तु थोड़ी देर बाजार की सैर तो कर लें।

इस वार्तालाप के पश्चात दोनों सैर को चल दिए। जब पूर्णतया अंधकार हो गया तो इन लोगों ने कॉलिज की राह ली। इनका रास्ता एक ऐसी सड़क से होकर था जहां मनुष्य वहुत कम आते-जाते थे। न ही उस सड़क पर प्रकाश का प्रवन्ध था। आगरा एक विस्तृत मगर है और इस के मुहल्ले दूर-दूर पर वसे हुए हैं। जव दोनों उस सड़क के एक ऐसे स्थान पर जा पहुंचे जहां पूर्ण अन्धकार था वहां उन्होंने एक सुरीली आवाज सुनी। आवाज यह गा रही थी 'कर्मन की गति न्यारी रे, ऊधो कर्मन की गति न्यारी।'

इनको यह शव्द एक पेड़ पर से आता ज्ञात हुआ। ये उसके पास जाकर गाने का आनन्द लेने लगे। यकायक गाना वन्द हो गया और पास के एक पेड़ में से प्रकाश निकल पड़ा। यह दोनों उस वृक्ष के समीप गए और देखा कि प्रकाश वृक्ष के एक सूराख में से आ रहा है। प्रकाश इतना तीव्र था कि आखें चकाचौंध होती थीं। वे दोनों आश्चर्य से उस प्रकाश की ओर देख रहे थे कि अचानक प्रकाश पुनः वन्द हो गया और इनके चक्षुवों के आगे पूर्व से अधिक अंधेरा छा गया। ठीक इसी समय उस सूराख में से फिर गाने की सुरीली आवाज आरम्भ हो गई—

अव छोड़ पाप सारे विद्या से प्यार करले।
नहीं तो फिरेगा रोता मूर्ख विचार कर ले॥
वेश्या से प्यार करना जिसने तुझे सिखाया।
और पांच सौ रुपया जिसने तेरा चुराया॥
उस से अलग तू अपना सम्बन्ध आज करले।
नहीं तो फिरेगा रोता मन में विचार करले॥
छुड़वा के मित्र तेरा जिसने तुझे डुबोया।
हर काम नीच तुझ से जिस धूर्त ने कराया॥

कैलाशचन्द्र उस से अपना रुपया ले ले ॥
नहीं तो फिरेगा रोता मूरख विचार करले ।
जिसने तुझे अभागे मद्य माँस भी खिलाया ।
और जाल में तुझे है रति देव के फंसाया ॥
उस धूर्त को तू शत्रु अपना विचार करले ।
नहीं तो फिरेगा रोता मन में विचार करले ॥
समझा रहा है तुझको अब मान गुप्त की तू ।
सन्तों की दीक्षा से मूर्ख प्यार कर तू ॥
चेतावनी से मेरी कुछ तो सुधार कर ले :
नहीं तो फिरेगा रोता प्यारे विचार करले ॥

यह गाकर शब्द आना वन्द हो गया । इस गीत ने त्रिलोकी के हृदय में खलीबली उत्पन्न कर दी और कैलाशचन्द्र समझा कि पुनः यमराज ने आ धमकाया । त्रिलोकचन्द ने कहा—"कब तक इन धूर्तों की मक्कारी का दृश्य खड़े देखा करोगे । यह अवश्य किसी मक्कार की धूर्तता है" ।

इस पर पेड़ में से आवाज आई "अहहहह ! उल्लू का पठ्ठा" इस वाक्य ने त्रिलोकी और कैलाश दोनों को डरा दिया । यदि दिन होता तो शायद त्रिलोकचन्द्र कुछ साहस करता परन्तु इस समय पूर्ण अंधकार था और जगतमाया के नियमानुसार दुर्बलात्मा अंधकार में भय खाता ही करते हैं ।

कैलाश बोला, नहीं, हम तनिक देर में चलेंगे और तुमको भी ठहरना पड़ेगा ! (पेड़ से) क्यों जी क्या तुम यमराज हो ?

पेड़—नहीं ।

कैलाश०—तो कौन हो ?

पेड़—सच्चिदानन्द के दूत ।

कैलाश०—क्या उस छली सच्चिदानन्द स्वरूप गुप्त के ?

पेड़—(हंसकर) मूर्ख ! अरे सच्चिदानन्द सर्वशक्तिमान् ईश्वर का नाम :

कैलाश०—तुम्हारे गीत में एक स्थान पर गुप्त शब्द आया है। क्या यह कविता सच्चिदानन्द स्वरूप गुप्त की बनाई हुई है और क्या आप उसको जानते हैं ?

पेड़०—अरे अज्ञानी ! तू किस सच्चिदानन्द का पुनः पुनः नाम लेता है। हम न उसे जानें न उसके बाप को। यह कविता हमारी रची हुई है, और गुप्त शब्द इसमें इसलिए आया है कि हम तुझसे गुप्त हैं और प्रगट नहीं हो सकते।

कैलाश०—तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ कि त्रिलोकचन्द ने पांच सौ रुपये की चोरी की है ?

पेड़—अरे मूढ़ ! हम सर्वव्यापक सच्चिदानन्द के दूत हैं ! हमको क्या ज्ञात नहीं होता ! तुम्हारा प्रत्येक कार्य हमें ज्ञात है। बस तुमको उचित है कि दुष्ट हरामखोर पाजी, पापी, शराबी, कबाबी, व्यभिचारी और धूर्त का साथ छोड़ विद्याव्यसन में लग जाओ। बस अब हम न बोलेंगे। कैलाशचन्द ने कई प्रश्न और किये परन्तु कोई उत्तर न मिला। इस पर त्रिलोकचन्द यह कहता हुआ वृक्ष के पीछे को चला कि अवश्य यह वृक्ष पीछे से खोखला है और कोई ऐयार पीछे खड़ा होकर बोल रहा है।

परन्तु पेड़ पीछे से खोखला न था। कैलाशचन्द्र हटकर दूर खड़ा होकर कुछ सोचने लगा। त्रिलोकचन्द्र उस पेड़ के चारों ओर टटोलता हुआ घूमने लगा। त्रिलोकचन्द्र ऐसा कर ही रहा था कि उसके गाल पर एक ऐसा जोर का चपत लगा कि त्रिलोकचन्द के दुर्व्यसनों से दुर्बल किया हुआ शरीर उसको न संभाल सका और वह तिलमिला कर बैठ गया। फिर झट उठकर त्रिलोकचन्द्र भागा और कैलाशचन्द्र भी, जो तमाचे के शब्द से सब कुछ समझ गया था, उसके पीछे सरपट भागा। परन्तु त्रिलोकचन्द्र ऐसा सिर पर पैर रखकर भागा कि कैलाश उसको न न पकड़ सका जब तक कि वह कालेज के होस्टल के फाटक के लैम्प के प्रकाश में ठहर गया।

वहां पहुंच कर दोनों ने देखा कि एक [illegible] फाटक पर एक

परचा लिए खड़ा है। उसने कहा "पहिले इसको पढ़ लीजिए"। जो लिखा था उसका अर्थ यह था:—

कैलाशचन्द्र व त्रिलोक व्यभिचार के कारण कालेज और होस्टल से निकाल दिये गये हैं, उनको कालेज की हद के अन्दर न घुसना चाहिए।

दोनों ने अपने प्रिन्सिपल के हस्ताक्षर पहचाने और शोक व आश्चर्य की मूर्ति बनकर खड़े हो गए।

कैलाश०—(चपरासी से) हम अपना-अपना असबाव उठ लायें ?

चपरासी—वह देखिए, सब कुछ उस वृक्ष के नीचे पड़ा है, आपको अंदर जाने की आज्ञा नहीं है।

IT IS NEVER TOO LATE TO MEND

तीसरा अध्याय

प्रथम परिच्छेद

पाठकगण देखिए ! जगतमाया कितनी विचित्र है ! इस उपन्यास में कितना परिवर्तन आ गया। आपको कट्टोजान के उड़ जाने पर और कैलाश व त्रिलोकी के कालेज से निकाले जाने पर आश्चर्य हुआ होगा। यह रहस्य आपको विंध्येश्वरीप्रसाद का वृत्तांत पढ़ने से खुल जाएगा अतएव हम वह कथा आरम्भ करते हैं—

जब विंध्येश्वरी त्रिलोकचंद्र से लड़कर वहां से चल दिया उसके हृदय में बदला लेने की धुन सवार हुई। वह छिपकर उनकी वार्तालाप सुनने लगा। इस प्रकार उसको ज्ञात हुआ कि यह लोग देहरे जायेंगे। प्रातःकाल ही वह उनके कमरे में पहुंचा और त्रिलोकचन्द के सन्दूक का ताला तोड़कर कट्टोजान की एक तस्वीर निकाली और लेकर प्रिंसिपल के बंगले पर पहुंचा। उस तस्वीर पर बड़े अच्छे हस्ताक्षरों में लिखा

हुआ था "Presented by Katori Jan to Trilokchand" (कटोरी जान ने त्रिलोकीचन्द को अर्पण की)।

विंध्येश्वरी ने जाकर विस्तारपूर्वक कैलाशचंद्र और त्रिलोक का वेश्या से सम्बंध की कथा कह सुनाई परंतु बीच में अपना वर्णन छोड़ता गया। कथा समाप्त करने के पश्चात प्रमाण में वह तस्वीर पेश की जिस पर प्रिंसिपिल ने त्रिलोकी की लिखावट पहचानी। प्रिंसिपिल इससे पूर्व भी इन दोनों से बहुत क्रोधित था इस अवसर को पाकर उसने वह आज्ञा लिख मारी जो हमारे पाठक पढ़ चुके हैं।

इसके पश्चात विंध्येश्वरी दिन भर न जाने क्या सोचता रहा और रात्रि को उसने एक ऐसा कार्य किया कि जिसको सुनकर आप अचंभित होंगे।

रात को वह चोरी-चोरी कालेज के दफ्तर पहुंचा और कार्यालय के ताले को उसकी ताली से खोला यह ताली उसने क्लर्क के कहार को रिश्वत देकर क्लर्क के गुच्छे से निकलवा ली थी। कार्यालय खोलकर उसने अन्दर प्रवेश किया और सन्दूकची में से, जिसके ताले को तोड़ डाला था, दो सौ चालीस रुपए निकालकर ताला वहीं फेंक चलता बना। हमको उन युक्तियों की लिखने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती जिनसे विंध्येश्वरी ने कट्टोजान को अपने साथ चलने पर पक्का किया। संक्षेप में यह कि वह रात्रि में ही कट्टोजान को ले भागा।

प्रात:काल होने पर अपने कार्यालय की दशा को देखकर प्रिंसिपिल बड़ा विस्मित हुआ। अपनी ताली को वहीं पड़ी देखकर प्रिंसिपिल ने झट क्लर्क को बुलाया। क्लर्क ताली चुराई जाने के कारण अत्यन्त चिंतित हुआ। जब वह अपने घर ताली को खोज रहा था उसे अपने कहार पर सन्देह हुआ। कहार के बिना कुछ घबराकर भागने से उसका सन्देह पुष्ट हो गया। वह उसको पकड़े प्रिंसिपिल के सन्मुख ले आया और सब वृत्तांत सुना कर देरी के लिए हाथ जोड़ कर क्षमा मांगी। कहार को पाँच हंटर लगाकर प्रिंसिपिल ने पूछा "तुमने यह ताली किसको दी"

मार के सन्मुख भूत नाचता है बहरे। ने झट वतला दिया हजूर विंध्येश्वरी बाबू ने हमको पांच रुपये देकर बाबू जी का गुच्छा मंगवाया और यह ताली निकाल ली। अंग्रेज प्रिंसिपिल ने तनिक भी समय न गँवा कर पुलिस इंस्पेक्टर को बुलवाया और झट चपरासी का बयान लिखवा कर विंध्येश्वरी के नाम वारंट जारी करा दिया।

अब हम पाठकों को वहां ले चलते हैं जहाँ कैलाशचन्द व त्रिलोक-चन्द्र को छोड़ आए हैं।

चपरासी का उत्तर सुनकर त्रिलोकचन्द्र और कैलाशचन्द्र को बड़ा शोक हुआ। दोनों ने आकर अपना असबाब देखा तो त्रिलोकचन्द्र के ट्रंक का ताला टूटा पड़ा था। त्रिलोकचन्द्र ने जो अपना ट्रंक टटोला तो कट्टोजान की फोटो न पाई तुरन्त वह समझ गया कि अवश्य प्रिंसिपिल ने यह तस्वीर देख ली है। त्रिलोकचन्द्र तो अपने सामान को टटोल रहा था और कैलाशचन्द्र अलग खड़ा कुछ सोच रहा था। कुछ समय तक सोचने पर कैलाशचन्द्र को सूझने लगा कि त्रिलोकचन्द्र की मित्रता ने उसका सचमुच नाश कर दिया। फिर उसको उस गुप्त मनुष्य की बात स्मरण हुई। इतने में त्रिलोकचन्द्र बोल उठा—

"तुम्हारे ही कारण मुझे यह सब सहन करना पड़ा।"

कैलाश०—(दुःख से रोकर) क्यों झूठ ही मुझे दोष देते हो, तनिक तो ईश्वर का भय करो। क्या तुम्हीं ने मेरी सच्चिदानन्द से शत्रुता नहीं कराई? क्या तुम्हीं ने मुझे अगणित दुर्व्यसनों में नहीं फँसाया? क्या तुम्हीं वहका कर मुझें हरिद्वार नहीं ले गये? क्या तुम्हीं ने कट्टोजान से नहीं फँसाया क्या तुम्हीं ने मुझे चोर नहीं बनाया? क्या तुमने मुझ से सैकड़ों रुपये व्यय नहीं कराए? और तुम्हीं मेरे घर से पाँच सौ रुपये नहीं चुरा लाये? तो क्यों ऐसा कहकर मुझे दुखित करते हो? वास्तव में सत्य तो यह है कि तुम्हारे कारण मेरी यह दशा हुई है।

त्रिलोक०—यह तो तुम्हारा बहाना है। जो कुछ तुमने किया स्वयं अपनी इच्छा से किया है। लो स्पष्ट कहे देता हूं कि मैं तुमसे धन

ठगने के हेतु ही तुम्हारा मित्र बना था। किसी नीतिवान ने कहा है कि आवश्यकता के समय गधे को बाप बनाना पड़ता है' उसी कहावत के अनुसार में तुम्हारी चापलूसी किया करता था। मैंने तुम से खूब माल मारा। तुम मूर्ख थे, अपने हानि-लाभ को न समझ सके, इसमें मेरा क्या दोष !

कैलाश०—(मन में बड़ा दुःखित होकर) हाय, हाय, मुझे यदि ज्ञान होता कि तुम ऐसे होओगे तो मैं भूल कर तुम्हारा साथ न करता। हे ईश्वर क्या संसार में इसी का नाम मित्रता है। क्या इसी को विश्वास कहते हैं। हाय हाय उस समय मेरी बुद्धि कहाँ चली गई थी जब मैंने आस्तीन के सांप को पाला था। वास्तव में भाई मेरा ही दोष है। मेरी ही मूर्खता थी कि मैंने अपना हानि-लाभ न पहचाना। अच्छा लाओ, मेरे पाँच सौ रुपये मुझे दे दो।

त्रिलोक०—बस हवा खाओ, उन पांच सौ में से तुम्हें एक कौड़ी न मिलेगी, ऐसे····· सत्यानाशपुर में बसते हैं !

इस उत्तर को सुनकर कैलाश की आंखें खुल गईं उसके हृदय पर मानो वज्राघात हुआ। कैलाश दिल मसोस कर रह गया। उसका हृदय दुःख से भर गया उसने फिर कहा:—

कैलाश०—(क्रोध से) क्यों नहीं देगा। मेरा रुपया है तुझे देना पड़ेगा।

त्रिलोक०—(सिर हिला कर) अबे चल चरकटे ! जा चह-बच्चे में मुंह धो आ।

कैलाश०—गाली क्यों देता है ! हम अपना रुपया मांगते हैं तू गाली देता है। क्या यही मनुष्यता है ?

त्रिलोक०—(कुछ लज्जित होकर, निर्लज्जता से) अच्छा आप ही मनुष्य सही। ऐसे मनुष्यों से गधे अच्छे !

कैलाश०—तो क्या तुम गधे हो ?

त्रिलोक०—तनिक जिह्वा सम्भाल कर बोल नहीं तो उठाकर नाली में फेंक दूंगा।

कैलाश०—अच्छा तो मैं तुझ से बल में कम नहीं हूं। आओ कुश्ती लड़ लो। परन्तु तुमको मेरा रुपया देना पड़ेगा।

त्रिलोक०—रुपया तो तेरा ताऊ भी नहीं ले सकता (ताल ठोक कर) आ जा धोती कसले।

इस पर त्रिलोकचन्द्र व कैलाशचन्द्र लड़ने को प्रस्तुत हो सड़क पर आ खड़े हुए। कैलाशचन्द्र ने त्रिलोकचन्द्र की कमर पकड़ ली और उसको उठा दे मारने की सूध करने लगा···। टनन्, टनन् टन, हटो ओ लड़ने वालो एक तरफ हो जाओ! एक रबड़ टायर गाड़ी पीछे से आ पहुंची। कैलाश व त्रिलोकी हट कर खड़े हो गए। गाड़ी में बैठने वालों में से एक ने इनकी ओर ताक कर देखा और घोड़े की लगाम खेंच ली। गाड़ी में से दो मनुष्य उतरे। एक लाल पगड़ी वाला कोतवाल और दूसरे कैलाशचन्द्र के चाचा लक्खीमल। कोतवाल ने बढ़कर त्रिलोकचन्द्र का हाथ पकड़ लिया और कैलाशचन्द्र रोता-रोता लक्खीमल के पैरों पर गिर पड़ा।

कोतवाल—क्यों वे हरामखोर, तूने लाला के पांच सौ रुपये चुराये या नहीं।

त्रिलोकी०—(भय से कांप कर) कैसे···कैसे ··रु···रु···पये म म···म···।

कोतवाल—देख अभी बतलाता हूं कैसे रुपये!

इतना कह कर कोतवाल ने कमर से चमड़े का हण्टर खोला और तड़ा तड़ पड़ा पड़ त्रिलोकचन्द्र के मारना आरम्भ कर दिया।

चार पांच हण्टर खाकर त्रिलोकचन्द्र ने नोट निकाल कर थानेदार के हाथ पर रख दिये।

कोतवाल—(नोट लालटेन की रोशनी में देखकर) और चार सौ रुपये कहां हैं (एक हन्टर और जड़ा)।

त्रिलोक०—(इधर-उधर देखकर) जी ई ई ई यह रहे। (कोट की जेब में से एक चमड़े का बैग निकाल कर थानेदार को दे दिया।)

कोतवाल उसका हाथ छोड़कर गाड़ी की ओर बढ़ा और कोई चमकदार चीज और रस्सा उठा लिया। त्रिलोकी के हाथ में हथकड़ी पहना दी गई। त्रिलोकचन्द्र ने बहुतेरा कहा मैंने रुपये तो दे दिए अब मेरा क्या करोगे छोड़ दो परन्तु उसकी एक न सुनी गई। कोतवाल ने सीटी बजाई। झट ही सिपाही आ पहुंचे। उनको इनका सामान सुपुर्द करके कोतवाल ने कहा—इस सामान को शीघ्र कोतवाली में भेजो। इसके पश्चात् थानेदार त्रिलोकी को लेकर गाड़ी में बैठ गया। कैलाशचन्द्र भी गाड़ी में बैठ गया। लक्खीमल ने घोड़े की बाग ढीली की और घोड़ा सरपट चल दिया। रास्ते में लक्खीमल ने कहा—

कैलाशचन्द्र! क्या तुम समझते हो तुम कि सबकी आंखों में धूल डाल सकते हो। तुम्हारे उस समय देहरादून पहुंचने ने ही मुझे बतला दिया था कि तुम्हारी नियत कुछ और ही है। उसी रात्रि को पांच सौ रुपये की चोरी मेरे मन में तुम्हारी करतूत प्रतीत हुई। तुम तो रात को भैय्या जी के पास सो रहे थे। मैं समझ गया यह कार्य सन्देह मिटाने को था और मैं समझ गया था कि तुम्हारे मित्र हजरत त्रिलोकचन्द्र ने यह चोरी की थी। जब तुमने आने की जल्दी की तो मुझे और भी सन्देह हुआ। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे चला आया। स्टेशन के समीप मुझे एक मनुष्य मिला जिसको मैंने पहिले कभी न देखा था। उसने मुझे न जाने किस प्रकार पहचान लिया और मुझ से तुम्हारी सब धूर्तताओं का वर्णन किया। उसने बतलाया कि तुम किसी कट्टोजान नामी वेश्या से फंसे हो, उसके लिए ही तुम एक सौ रुपए की चोरी किया चाहते थे। परन्तु इस डाकू ने तुम्हें धोखा दिया। इसने बड़ा लम्बा हाथ मारा और पांच सौ रुपये ले भागा। इस मूर्ख को यह न सूझा कि इसे नोट न चुराना चाहिए। मैं नोट के नम्बर की रपट लिखा चुका था और वह रपट तार द्वारा यहाँ भेजवा चुका था। यह कोतवाल मेरे सहपाठी निकले और जो कुछ इन्होंने किया तुम देख चुके हो। अब तुमको चाहिए कि अपने किये पर पश्चाताप करो, चलो घर चलो मुझे अब तुम्हारा विश्वास

नहीं हैं । तुमको घर ही रहना पड़ेगा । वहां तुमको अधिकार होगा कि अपने जीवन को इसी प्रकार बरबाद करो अथवा सुधारो । यह सुन कर कैलाशचन्द्र सहम गया, उसको चारों ओर अन्धकार ही दृष्टिगोचर होने लगा । उसके चक्षुओं से बरवस अश्रुधारा वह चली । उसने चाचा के पैरों में सर रख दिया और हाथ जोड़ कर नम्र स्वर से कहा…

"चाचा जी ! मैं वास्तव में दोषी हूं । मैं दण्डयोग्य हूं । यह सर उपस्थित हैं । इसका चाहिए सो कीजिए । यदि आपकी आज्ञा हुई तो घर चलूंगा और आपके चरणों के प्रसाद से अपने शेष जीवन को यथाशक्ति सुधारूंगा । मैं क्षमा प्राप्त करने का साहस तो नहीं कर सकता । यदि आप क्षमा कर दें तो आपकी अनुपम उदारता हो !

इतना कह कर कैलाशचन्द्र उच्च स्वर से रोने लगा ।

लक्खीमल के चक्षु भी आंसुओं से भीग गए । उन्होंने रोते भतीजे को उठा कर छाती से लगा लिया और उसके आंसू पोंछ कर कहा—

बेटा जाओ, मैं तुमको क्षमा करता हूं, अपने जीवन को नेकनियती से व्यतीत करो ?"

इतने में कोतवाली आ गई और गाड़ी रुक गई ।

द्वितीय परिच्छेद

पाठकगण ! त्रिलोकचन्द्र का चालान हो गया । कैलाशचन्द्र घर आ गया । उसे घर आए चार अथवा पांच दिन हुए हैं । इस समय में न तो प्रतापसिंह ही उसे देखने आया न चन्द्रशेखर । कैलाश को इसका बड़ा आश्चर्य था । प्रतापसिंह और चन्द्रशेखर कैलाश की दशा को सुन चुके थे । अब भला वह क्यों उसके पास आने लगे थे । परन्तु कैलाश इसका कारण यही समझता था कि उनको अभी तक सूचना नहीं मिली । इस लिए एक दिवस कैलाशचन्द्र प्रतापसिंह के मकान पर पहुंचा और प्रताप-सिंह को पुकारा, आवाज सुनकर प्रतापसिंह बाहर आया और पहिचानने

पर भी मुंह बनाकर बोला—'तुम कौन हो' इस प्रश्न को सुन जो दशा कैलाश की हुई होगी उसका अनुमान पाठक स्वयं करलें। उसने निराशा से कहा "क्या तुम इतनी जल्दी भूल गये। मैं कैलाशचन्द्र हूं!"

प्रताप०—कौन कैलाशचन्द्र क्या वह हमारा सहपाठी।

कैलाश०—(दु:ख से) हां! हां! वही सहपाठी और मित्र।

प्रताप०—(निर्लज्जता से) अच्छा तो कैसे आए हो?

कैलाश०—(निराशा और दु:ख से) भाई चलो, अन्दर बैठकर बातचीत करेंगे। तुमतो बड़ी रूखी बातचीत करते हो।

प्रताप०—हमारा वृत्तान्त पिताजी को ज्ञात हो गया है। उन्होंने मुझे तुमसे मिलने की मनाई कर दी है इसलिए तुम्हें अन्दर नहीं बिठला सकता। कोई काम हो तो बतलाओ।

कैलाश०—(दु:ख से विकल होकर) यदि कोई विशेष कार्य न हो तो जाऊं?

प्रताप०—(कुछ लज्जित हुआ लज्जा को छिपाकर) जी हां!

यह कह कर प्रतापसिंह अन्दर चला गया। जगतमाया! वाह! पाठको इस वार्तालाप से कैलाशचन्द्र के आंसू निकल पड़े। उसमें शोक के कारण इतनी शक्ति शेष न रही कि अपने घर पहुंचे। उसने घर के लिए एक गाड़ी किराए की और ज्यों-त्यों घर पहुंचा। घर जाकर वह एक पलंग पर लेट गया और घण्टों तक कुछ सोचता रहा। वह कुछ सोच ही रहा था कि उधर से चन्द्रशेखर एक मित्र के हाथ में हाथ डाले टहलता हुआ आ निकला। कैलाशचन्द्र उसको देखकर उठा और बोला 'मिस्टर चन्द्रशेखर'! चन्द्रशेखर समझ गया कि आवाज कैलाशचन्द्र ने दी है। कि तब भी उसने कहा 'कौन' उत्तर मिला "मैं हूं कैलाशचन्द्र" यह सुन कर चन्द्रशेखर खड़ा हो गया। और पूछा क्या कहते हो'?

कैलाश०—दोस्त जरा इधर आओ।

चन्द्र०—क्या काम है? इस समय मुझे पर्याप्त अवकाश नहीं है।

कैलाश०—अरे भाई तुम तो हमारे मित्र थे क्या रुष्ट हो गए हो?

चन्द्र०—तुम त्रिलोक के मित्र थे, मैं भी त्रिलोकचन्द्र का मित्र था। मेरा तुम से क्या सम्वन्ध मुझे इस समय अत्यन्त आवश्यक कार्य है। इतना कहकर चन्द्रशेखर चल दिया। पाठकगण ! कैलाशचन्द्र के चक्षुओं के सन्मुख अंधेरा छा गया। निराशा ने उसके हृदय को मूल से हिला दिया। वह आप ही आप कहने लगा—

क्या वास्तव में प्रतापसिंह और चन्द्रशेखर ने मुझे धोखा दिया ! क्या वास्तव में उन्होंने मेरा निरादर किया अथवा मैं स्वप्न देखता हूं। नहीं नहीं, मैं अवश्य कोई स्वप्न देखता हूं वह विचारे ऐसा क्यों करने लगे। त्रिलोक इत्यादि ने तो लालच में आकर धोखा दिया परन्तु यह ऐसा क्यों करेंगे। अच्छा देखूं स्वप्न देखता हूं या जाग्रत हूँ। (अपने शरीर को चूमता है तो झट से दुःख से हाथ हटा लेता है) ओ हो ! मैं तो जाग्रत हूँ। तो वास्तव में इन दोनों ने मुझे धोका दिया। "अब कैलाशचन्द्र ने अपनी स्थिति को समझा" हाय हाय मेरा तो सत्यानाश हो गया। जिनकी मित्रता पर मैं उमड़ा फिरता था, जो मुझे हर समय प्रसन्न रखने का उद्योग किया करते थे, जो मेरे पसीने पर रुधिर बहाने पर उद्यत रहा करते थे, नहीं बल्कि जो मेरे सन्मुख संसार को कुछ भी नहीं समझा करते थे, हाय ! आज वह मेरा इस प्रकार निरादर करते हैं। ठीक है, सच्चिदानन्द ठीक कहता था कि यह रुपये के यार हैं जब मैं धनिक था यह लोग मुझे सर पर उठाये फिरते थे। अब मैं निर्धन हूँ मेरे चाचा मुझ से रुष्ट हैं, तो यह मुझ से वात भी नहीं करते।

ओफ ! मैं तो बडा मूर्ख रहा। मैंने जिनके कारण सच्चिदानन्द जैसे साधु से शत्रुता की, कई सौ रुपया व्यय किया, चोरी करके अपनी कुल मर्यादा को न मिटने वाला धब्बा लगाया, हाय जिन को मित्र समझ कर मैंने उनके कारण सिगरेट पीकर जिगर जलाया, वेश्या से प्यार किया, उसमें सैंकडों रुपये चुरा चुरा कर व्यय किये; हाय ! जिस माता ने मुझे बचपन में सहस्रों कष्ट सहन कर पाला था। उस पूज्य अपनी करुणामयी माता को जिनके कारण धोखा देकर उसका ... चुराया, उस दुष्ट

नटनी के वास्ते जिनके कारण मैंने कुलरीत के प्रतिकूल मद्य-मांस खाकर अपना मुख काला किया। हाय हाय ! न जाने कितने प्राणी मेरे लिए मारे गए होंगे ! हाय जिन दुष्टों के कारण मैं व्यभिचार में लिप्त हुआ हे ईश्वर मेरे शरीर की क्या दशा हो गई (उठकर शीशा देखता है और हाथ पैर को भी देखता है। और दुहत्तड़ मार कर पलंग पर गिर पड़ता है) हाय ! हाय !! यह मुझे क्या हो गया, जिनके कारण अपने बलिष्ठ शरीर का सत्यानाश कर दिया। जिनके वास्ते मैंने अपने प्यारे पूजनीय कुटुम्बियों, चाचा इत्यादि को रुष्ट किया, जिनके वास्ते मैंने क्या कुछ नहीं किया ! हाय ! हाय ! वह ही मुझे धोखा दें वह दुष्ट मेरा सत्यानाश कर अलग हो गये। उनका क्या विगड़ा, मूर्ख तो मैं रहा। क्या मैं किसी प्रकार अपना गंवाया हुआ समय पा सकता हूँ ? यदि पाऊँ तो उसे कभी इस प्रकार न गंवाऊँ। कोई सच्चिदानन्द जैसा मित्र बनाऊं। और उसकी आज्ञानुसार चला करूं। परन्तु मैंने सुना है "गया वक्त फिर हाथ आता नहीं" ओह ! बस अब मैं नहीं सुधर सकता (अब कैलाश-चन्द्र जोर जोर से रोने और कहने लगा) "हाय मैं कहां जाऊँ कौन मेरी सहायता करेगा ! न जाने सच्चिदानन्द कहाँ है ? और हो भी तो क्या मुंह लेकर उसके पास जाऊँ ! नहीं नहीं, मुझे उसके पास जाने का अधिकार नहीं है। मैं तो कहीं का न रहा। आह ! इस जीवन से तो मृत्यु अच्छी है, परमेश्वर शीघ्र उठालो। इतने में ही कमरे में लक्खीमल ने प्रवेश किया, कैलाशचन्द्र अपनी टूटी-फूटी भाषा में विलाप कर रहा था।

तृतीय परिच्छेद

लक्खीमल बोले—क्यों बेटा क्यों रोते हो ?

कैलाश०— (सुबकी लेकर) कुछ नहीं चाचा जी ! ऐसे ही पूर्वकृत्य स्मरण कर रुदन आ गया था।

लक्खी०—बेटा ! अब पश्चाताप करना निर्मूल है। अब भविष्य की चिन्ता करो।

कैलाश०—जी हां !

लक्खी०—हम तुम्हारा विवाह इसी मास में करना निश्चय कर चुके हैं, तुमको स्वीकार है ?

कैलाश—जी नहीं। (पैरों में गिरकर) पूज्य चाचाजी ! मेरी दशा बड़ी करुणामय है। मैं अपने जीवन से निराश हो गया हूं। मैं अब थोड़े दिनों का मेहमान हूं। जितने दिन मेरे शेष हैं उनको मैं कमरे में बन्द हो करके किसी को मुंह बिना दिखलाये बिता देना चाहता हूं। आप मेरे ऊपर कृपा करें और विवाह इत्यादि का विचार छोड़ दें।

लक्खी०—(गले लगाकर) बेटा ! तेरा इतना दुःखी होना तेरे पापों का पर्याप्त प्रायश्चित्त है। क्यों अब व्यर्थ पश्चात्ताप करते हो ! अपने जीवन से निराश न हो और आशा से अपना जीवन सुधारो, ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा।

कैलाश०—चाचा जी (गले से हटकर) मैं इस योग्य नहीं हूं कि आप मुझे गले लगायें। मैं बड़ा पापी हूं। यह आपकी उदारता है कि आप समझते हैं कि मेरा प्रायश्चित्त हो गया। मेरा प्रायश्चित तो अब केवल मृत्यु है।

लक्खीमल०—(दुःखी होकर) बेटा मुझे दुःखी न कर ! मेरा हृदय पिघल जाता है, उसको अधिक न पिघला। बस इन बातों को छोड़ और आनन्द से विवाह की तैयारी कर।

कैलाश०—चाचाजी, मैं कैसे आनन्द मनाऊं ! यदि मेरी प्रारब्ध में आनन्द मनाना होता तो क्यों मैं इस फेर में फंसता ! मैं तो कह चुका हूं कि मेरा शेष जीवन दुःख उठाने के निमित्त है। मेरे जीवन से पृथ्वी पर भार है। मेरी परमेश्वर से प्रार्थना है कि पृथ्वी माता का भार शीघ्र दूर करें।

लक्खीमल इस बात को सहन न कर सके। वह रोते हुए भतीजे को वहीं छोड़कर रोते हुए बाहर निकल गये।

पाठकगण ! इस बात को सुनकर कौन दुःखी न होगा, मैं सच कहता हूं कि पापी जन इसी प्रकार पश्चात्ताप किया करते हैं। पापों से लिप्त मनुष्य इससे उपदेश लें।

इसके पश्चात् कैलाशचन्द्र बाहर आया। इधर-उधर बैठकर उसने मन बहलाना चाहा परन्तु कहीं उसका चित्त न लगा। वह दिन भर पागलों की नाईं इधर-उधर बकता फिरा और न जाने किस धुन में लगा रहा।

चतुर्थ परिच्छेद

पिछली घटना को आज कई मास हो चुके हैं। आजकल शीत का आधिक्य है। देहरादून में शीत अधिक होता है। इसी कारण यहां के अमीर लोग प्रायः प्रातःकाल आठ बजे बिस्तरों से उठते हैं।

कैलाशचन्द्र अपने कमरे में सो रहा है। टाइमपीस में ठीक सात बजे हैं। घड़ी में से टन टन की ध्वनि निकलनी आरम्भ हुई। कैलाश-चन्द्र उठ बैठा और घड़ी का एलार्म बन्द कर दिया।

वह शीघ्र ही नित्य कर्मों से निवृत्त होने का उद्योग करने लगा।

पाठक ! आपने पिछले परिच्छेद में पढ़ा है कि कैलाश के हृदय पर कैसा असह्य धक्का लगा था। यद्यपि कैलाश का हृदय पापों से कलुषित हो चुका था, तो भी उसके हृदय से लज्जा का बीज सर्वथा नाश नहीं हुआ था। उसके पापी हृदय में अब भी एक कोमलता थी। जो ऐसे वज्राघात को सहन करती थी। उसके अन्तःकरण में सहस्रों बार दुष्कर्मों से लिप्त होने पर भी एक आन्तरिक मुरझाई हुई आवाज थी जो कभी-कभी उसको कुपथ पर जाने से रोका करती थी।

बाल्यकाल में कैलाश को जो सच्चिदानन्द की शुभ संगति मिली थी, उसके कोमल अंकुर के ऊपर यद्यपि दुराचार की मिट्टी चढ़ चुकी

थी, तथापि इस धक्के की धमक से वह मिट्टी हट गई और पुनः साधु संगति और सदुपदेश रूपी जल मिलने पर उस बीज के अंकुरित और पल्लवित होने की आशा होने लगी।

पाठक! शायद कैलाश का इतनी शीघ्र शुभ आकांक्षाओं से प्रेरित होना आपको आश्चर्यजनक प्रतीत हो! पिछले परिच्छेद में कैलाशचन्द्र का पश्चात्ताप और विचार-परिवर्तन पढ़ कर शायद आपने उसे अस्वाभाविक समझा हो परन्तु ऐसा नहीं है।

अविवेकी पुरुष पापों का भार अपने ऊपर लादते चले जाते हैं। परन्तु जब पापों का भार असह्य हो जाता है और किसी दुःखपूर्ण घटना के कारण पापी का हृदय विचलित हो जाता है तो प्रायः कुकर्मियों को पश्चात्ताप करते देखा गया है। उनके ज्ञानचक्षु खुले प्रतीत होते हैं। हां परन्तु ज्यों ही वह विपत्ति की घटा परिवर्तनशील समय की आंधी में उड़ जाती है त्यों ही दुराचार का प्रबल आकर्षण उस दोषी हृदय को पुनः दुराचार के कूप में खैंच ले जाता है। ऐसे विरले ही होते हैं जो ऐसे अवसरों पर सदैव के लिए सुधर जाते हैं।

जिस समय जुआरी को निर्धनता आकर घेरती है और क्षुधा और पिपासा पीड़ित अल्पवयस्क बालक उस के सन्मुख रोकर उसके हृदय को द्रवित करते हैं उस समय जुआरी दरिद्रता से दुःखित हो कहता है—

"भगवान्, यदि आपकी कृपा से इस समय मेरे कुटुम्ब की प्राण-रक्षा हो जाय तो मैं कदापि जुआ न खेलूंगा, परन्तु जब फिर उसकी जेब में रुपए खनखनाने लगते हैं तो वह उस दुर्व्यसन में भाग लेने से संकोच नहीं करता बड़े-बड़े नास्तिक, जब उनके सम्मुख मृत्यु का भयानक दृश्य नाचता है, परमात्मा को स्मरण करते हैं। पक्के मद्यपमृत्यु के भय से मद्य त्यागने की प्रतिज्ञा करते हैं।

परन्तु उनकी प्रतिज्ञायें क्षणिक होती हैं। हां, कोई ऐसे बुद्धिमान हैं जो आपत्ति से पूरा लाभ उठाते हैं। हमें यह देखना है कि कैलाश किस श्रेणी में है। अब हम अपनी कथा पुनःआरम्भ करते हैं।

कैलाश नित्य कर्मों से निवृत्त होकर कमरे में बैठा एक गहरी चिन्ता में निमग्न है, उसे अपने पिता की बड़ी चिन्ता है। उसके पिता विशूचिका से बच गए हैं परन्तु रोगों ने उनका पीछा नहीं छोड़ा।

एक रोग जाता है तो दूसरा आ घेरता है। कई महीने से वह शय्या से नहीं उठे हैं। दुर्बलता दिन-दिन उनके शरीर को कृश कर रही है।

कैलाशचन्द्र को बैठे-बैठे दो घण्टे के लगभग हो चुका है। आठ बज चुके हैं। ओस से भीगी हुई घास पर ओसकण बालरवि की सुवर्ण-किरणों से मोती बन चमक रहे हैं। पैरेड पर मानो मोती बिखर रहे हैं। एक मनुष्य पैरेड पर बिखरे हुए मोतियों को निर्दयता से पददलित करता हुआ कैलाशचन्द्र के मकान की ओर आ रहा है।

हैं, यह तो त्रिलोकचन्द्र है यह यहां कहाँ से आया।

पाठक! पुलिस विभाग जैसा सच्चा और कर्तव्य-पालक है वह किसी से छिपा नहीं है। हम किसी कारण इस विषय में कुछ न लिखेंगे। केवल इतना संकेत करना पर्याप्त होगा कि उस कोतवाल ने जिसे लक्खीमल अपना मित्र समझते थे कुछ लेकर त्रिलोकी को छोड़ दिया और बतला दिया कि पुलिस विभाग में मित्रता, प्रेम, विश्वास और सत्यता की कितनी मात्रा है।

लक्खीमल भी अपने रुपये पाकर कोतवाल की इच्छा न देखकर और त्रिलोकी के पिता के गिड़गिड़ा कर क्षमा और दया याचना करने पर चुप रहे। एक कारण इसका यह भी था कि भाई की रुग्णावस्था के कारण उनको अवकाश बहुत कम मिलता था।

त्रिलोकचन्द्र कैलाश के मकान पर आ पहुंचा और लज्जावश संकोच करते-करते कैलाश को आदावर्ज कर कुर्सी पर नीची गर्दन करके बैठ गया।

पंचम परिच्छेद

कैलाश यद्यपि वड़ा दु:खित था किन्तु वह इतना असभ्य नहीं था कि प्रताप की नाईं त्रिलोक के साथ रूखा व्यवहार करता। त्रिलोकचन्द्र बोला—

भाई साहब ! मैंने आपका वड़ा अपराध किया है मैं इस समय अपने किए की क्षमा मांगने आया हूं।

कैलाश०—आपको अपने किये का दण्ड मिल चुका। मुझ से क्षमा क्यों मांगते हैं !

त्रिलोक०—(वड़ी चतुरता से मुंह बना कर और हँस कर) उन दिनों हम लोगों को क्या सूझी कि आपस में लड़ पड़े वास्तव में आपस की लड़ाई वुरी ही होती है।

कैलाश०—जिनकी मित्रता स्वार्थरहित नहीं होती उनकी कभी बन नहीं सकती और पापियों को अवश्य ही कष्ट होते हैं।

त्रिलोक०—यह सत्य है, परन्तु कष्ट से कोई धर्मात्मा भी नहीं बचता।

कैलाश०—यदि धर्मात्मा भी कष्ट से नहीं बचते तो क्या पापी बचते हैं ?

त्रिलोक०—नहीं, मेरा तात्पर्य यह नहीं है, मैं कहता हूं कि संसार में दु:खों से कोई नहीं बचता।

कैलाश०—यह नहीं हो सकता है। यदि धर्मात्माओं को सुख न मिले तो वह धर्म काहे को करें ?

त्रिलोक०—मेरी वात की पुष्टि इतिहास करेगा। जितने भी धर्मात्मा हुये हैं उन सव को अति कठोर यातनाएं भोगनी पड़ी हैं। क्राइस्ट, मुहम्मद और दयानन्द इत्यादि सब के जीवन मेरी सम्मति को पुष्ट करते हैं।

हां, यदि धर्म का फल मिलता ही है तो अगले जन्म में मिलता होगा !

कैलाश—उन्हें इस जन्म में दुःख ही सही, परन्तु उसका नाम तो संसार में फैल जाता है।

त्रिलोक०—(मुस्कराकर) क्या रावण का नाम जगत विख्यात नहीं है ?

कैलाश०—(बेचैन होकर) भाई रावण का नाम तो अवश्य है। परन्तु उसे सब बुरा ही कहते हैं। कोई अच्छा नहीं बतलाता।

त्रिलोक०—(मन के भाव को छिपाकर) यह आप कैसे कह सकते हैं कि रावण को बुरा ही कहते हैं। संभव है लंका वाले उसको अच्छा समझते हों, उसके साथी उसे अच्छा कहते थे रामचन्द्र के अनुयायी उनको अच्छा बतलाते हैं।

नैपोलियन को अंग्रेज गालियां देते हैं फ्रांस वाले देवता समझते हैं, इसी प्रकार किसी भी मनुष्य के विषय में संसार की एक सम्मति नहीं है।

कैलाश०—भाई आखिर धर्म भी तो कोई चीज है।

त्रिलोक०—यह तो मैं जानता हूं कि मेरे कथन का आपके ऊपर असर नहीं होगा, क्यों कि आप इस दुर्घटना का मूल मुझे ही समझते हैं, तो भी मैं बतलाता हूं कि धर्म का ढकोसला क्या है। धर्म के विषय में तो आप जानते ही हैं संसार में सहस्रों धर्म हैं। एक धर्म का अनुयायी दूसरे धर्म वाले को पापी बतलाता है। इसलिए संसार का कोई धर्म नहीं है। प्रत्येक मनुष्य अपना धर्म रख सकता है। अब आप कहेंगे कि धर्म के मोटे-मोटे नियम (Rules of morolity) तो अवश्य सर्वमान्य हैं। ऐसा भी नसीं है आप शारीरिक शुद्धता अनिवार्य समझते हैं। तिब्बत में वही साधु समझे जाते हैं जो वर्षों में अपने कपड़े बदलते हैं। अफ्रीका की हौटोन्टौटस (Hottontots) जाति में व्यभिचार घृणित नहीं समझा जाता, वरन् व्यभिचारिणी स्त्री का मान होता है। भारत में मद्यपान दोष हैं, योरुप में यह लोगों के भोजन का आवश्यक भाग है। मांस खाना कोई महापातक बतलाते हैं कोई इसमें कुछ दोष नहीं समझते, योरुप में स्त्रियों को जो स्वतन्त्रता है वह यहां दूषित समझी जाती है।

सबसे मोटा असूल सत्यभाषण समझा जाता है। परन्तु इस पर भी संसार सहमत नहीं है। भारतवर्ष के विद्वान् सत्य को सर्वथा मान्य और आवश्यक समझते हैं। योरुप वाले मिथ्या व्यवहार और प्रतिज्ञा भंग करने को अभिमान के साथ पालिसी (Policy) कहते हैं, राजनैतिक आवश्यकताओं (Expodiency) के सन्मुख सारे धर्म के मोटे और पतले नियमों का हार्दिक बहिष्कार किया जाता है, और ऐसा करते हैं। हम से सभ्य योरोप निवासी यह सर्वमान्य प्रभाव स्पष्टतया बतलाते हैं कि संसार में न धर्म कोई वस्तु है न सभ्यता। आवश्यकता के अनुसार कर्म करना ही संसार का धर्म है। रही दुःख-सुख की बात सो तो स्पष्ट है कि संसार और समय की परिवर्तनशीलता ही कारण है।

कैलाश०—(निरुत्तर होकर) तुम्हारी युक्तियां तो बड़ी विचित्र हैं परन्तु यह बात मेरे हृदय में नहीं बैठती।

त्रिलोक०—(हँस कर) इस समय तो आज्ञा दीजिए, मेरा अपराध क्षमा करना। अच्छा आदाबअर्ज ! यह कहकर त्रिलोकचन्द्र चला गया।

पाठक ! कहा जा चुक हैं कि कैलाशचन्द्र को इस समय शुभ संगति की आवश्यकता थी। यदि उसी समय पर सदुपदेश मिल जाता तो उसके सुधरने की आशा थी। आगरे वाली घटना को कई मास बीत चुके थे। धीरे-धीरे उसके हृदय से सारी शुभाकांक्षाएं जा चुकी थी। त्रिलोकचन्द्र की युक्तिभरी पूर्ण गप्प ने उसके हृदय में खलबली उत्पन्न करदी। बहुत देर तक विचार करने के बाद उसे भी धर्म शब्द निस्सार प्रतीत होने लगा। कुकर्मों के आकर्षण ने अग्नि में घृत का कार्य किया। धीरे-धीरे कैलाशचन्द्र के विचार बहुत पलट गये।

हा शोक ! कैलाशचन्द्र उसी श्रेणी का मनुष्य निकला जो कष्ट पर कष्ट उठाने पर भी और दुराचार के अंधेरे कूप में से एक बार सर निकाल कर फिर आंख मीच कर उसमें कूद पड़ते हैं।

जगत् की माया बड़ी विचित्र है !

षष्ठ परिच्छेद

आजकल कैलाश और त्रिलोक सायंकाल को साथ टहलने को जाया करते हैं। कैलाश की और त्रिलोक की फिर मित्रता हो गई। बच्चों का और दुष्टों का एक स्वभाव है कि लड़ भिड़ कर फिर झट मित्र हो जाते हैं। भेद केवल इतना है कि बच्चे अपने हृदय के दोषरहित होने से ऐसा करते हैं लेकिन दुष्ट धूर्तता, स्वार्थपरता और कुटिलता के कारण।

देहरादून में राजपुर रोड के दोनों ओर अधिकतर यूरोपियन लोगों के बंगले कोठियां हैं इस ही कारण इस सड़क पर गौरांग युवतियां प्राय: सायंकाल को टहलने निकलती हैं। दुष्ट त्रिलोकचन्द्र, कैलाश को इस ही सड़क पर टहलाने ले जाया करता है। यह दोनों प्राय: इन श्वेतांग कुमारियों को ताका करते हैं।

आज रविवार है। त्रिलोकी और कैलाश किराये की साईकिलों पर राजपुर रोड का चक्कर लगा रहे हैं। त्रिलोकचन्द्र "Struggle for existuce and sarvinal of the fittest" की थ्योरी का आशय कैलाश को समझा रहा है।

अंधेरा हो चुका है। एक युवती अपनी साइकिल पर राजपुर की ओर जा रही है। सड़क पर इस समय सिवाय इन तीनों के कोई नहीं है। कुछ समय तक कैलाश व त्रिलोक आपस में न जाने क्या कानाफूसी करते रहे, फिर कुछ समय पश्चात् त्रिलोकी बोला—

"तुम जाकर अपना अनाड़ीपन दिखलाते हुए, उस की साईकिल से अपनी साईकिल भिड़ा दो, जब वह गिरने लगे तो झट कूद कर उसको हाथों में उठा लेना और क्षमा मांगना, इतने में मैं भी पहुंच जाऊंगा, फिर बातें होंगी" कैलाश गया और साईकिल भिड़ाने का अवसर देखने को उसके साथ-साथ चलने लगा। साइकिल लड़ गई। कैलाश फुरती न कर सका। युवती गिर पड़ी। कैलाश ने उसे उठा लिया। कपड़े झाड़ कर क्षमा मांगने लगा। युवती के हलकी चोट लगी। उसने भी ऐसा न दिखला

कर कैलाश की साइकिल पकड़ ली और कहा "Damn you Indian dog. Bloody fool I will hand you over to the police" अर्थात् तुम भारती कुत्ते हो मैं तुमको पुलिस में पकड़वाऊंगी।

वहां त्रिलोकचन्द्र भी पहुंच गया। इसी समय दो अंग्रेज जो सैर को जा रहे थे इस गड़वड़ को देख कर अपनी अपनी साइकिलों से उतर पड़े और आकर उस युवती से मामला पूछा।

युवती—(अंग्रेजी में) कैलाश की ओर तरजनी दिखा कर—"इसने मुझे जानबूझ कर गिराया है।"

त्रिलोक—हां इसने मेरे सामने गिराया।

कैलाश ने दुःखपूर्ण आश्चर्य से त्रिलोकी की ओर देखा। त्रिलोकी ने मुंह फेर लिया।

कैलाश—त्रिलोकी! ऐसा धोखा! स्वयं सव कुछ कराया, अब अनजान वनते हो।

त्रिलोक०—(अंग्रेजों से) आप श्रीमती जी से पूछ सकते हैं। मैं तो पीछे से आया हूं। यह वकता है युवती ने भी उसका समर्थन किया। त्रिलोकी अपने घर चला गया। एक अंग्रेज के पास एक हण्टर था उसने कैलाश को हण्टर जमाने शुरू किए। हन्टर पर हन्टर खाने से कैलाश जव अधमरा हो गया और उसने हाथ जोड़कर जीवन दान मांगा तो वह उसे पकड़ कर थाने में ले गये।

थानेदार ने कैलाश को हवालात में बन्द कर दिया और करोड़ीमल को सूचना दे दी।

सप्तम परिच्छेद

करोड़ीमल वड़े निर्वल हो रहे थे। अस्वस्थता से उनके शरीर में हड्डियों और खाल के अतिरिक्त कुछ न रहा था। इस सूचना को पाते

ही करोड़ीमल सहम गये। बुढ़ापे में अपने उज्ज्वल वंश में अमिट कलंक का धक्का वह सहन न कर सके।

अपने इकलौते पुत्र की करतूतों को सुनकर उनको असह्य वेदना होने लगी। लक्खीमल ने थानेदार को बुलाया। करोड़ीमल ने अपनी पगड़ी उसके चरणों में रख दी और गिड़गिड़ा कर कहा, मेरी नाक बचाना तुम्हारे हाथ में है। लक्खीमल ने एक नोट निकाल कर उसके हाथ में रख दिया। थानेदार के हाथ में सोने की चिड़िया आ गई। १०००) का नोट पाकर थानेदार प्रसन्न हो गया और जाते ही इजहार लेकर कैलाश को छोड़ दिया।

करोड़ीमल को अपनी बदनामी का बड़ा भय था। कैलाश के इस कृत्य से अपने कुल को कलंकित होते देखना वह कब सहन कर सकते थे। दुःख के कारण कैलाश के पिता की तबियत खराब हो गई और वह खाट पर पड़ रहे। कैलाश जिसका शरीर कोड़ों की मार से सूज गया था रोता हुआ पिता के पास आ बैठा।

धीरे-धीरे करोड़ीमल की अस्वस्थता बढ़ती गई और उनकी दशा शोचनीय होती गई। बहुतेरे डाक्टरों की दवा की गई, सैंकड़ों उपाय किये गये परन्तु लाला जी की अस्वस्थता बढ़ती ही गई।

रात के ग्यारह बजे यकायक करोड़ीमल जी उठे। लक्खीमल, कैलाशचन्द्र व उसकी माता उनके पास बैठे थे। लाला जी ने सबकी ओर दीन दृष्टि से निहारा। कैलाश को तिरस्कारपूर्वक उन्होंने अपने से पृथक कर दिया और लाल लाल चक्षु करके उसको डपट कर कहा—

चण्डाल मेरे कुल पर ऐसी कलंक कालिमा, राक्षस तूने क्यों मेरे गृह में जन्म लिया। मेरी बुढ़ापे में इज्जत का विध्वंस कर दिया! इतना कह कर करोड़ीमल की जिह्वा लड़खड़ाने लगी। उनके शब्द स्पष्ट सुनाई न दिये। वह खाट पर गिर पड़े उनकी आंखों से अश्रुधारा बह चली, उनके मुख से यह टूटे फूटे शब्द निकलते सुनाई देने लगे—

हाय! दुष्ट, सत्यानाशी...मृत्यु...हाय हाय.........। कुछ देर

दीनों की नाईं बकने के पश्चात्, लाला जी चुप हो गए। हिलाने डुलाने पर ज्ञात हुआ कि बेहोश हैं। कुछ समय पश्चात् नाड़ी नब्ज बन्द होने लगी। अत्यन्त दुस्सह वेदना से उनका मुख विस्कृत हो गया। पाठक ! लेखनी में धैर्य, साहस और शक्ति नहीं है कि लिखे क्या हुआ।

(What followed why oecall ?)

बस इन शब्दों के साथ लाला जी का प्राण पखेरू इस असार संसार को कैलाश के निन्दनीय कृत्य पर धिक्कारता हुआ उड़ गया। दुष्ट, तू मर जाता तो अच्छा था।

कैलाश अब तक मूर्तिवत् खड़ा सब कुछ देख रहा था। दुखपूर्ण वार्ता का भयंकर अन्त इतना भीषण था कि कैलाश कुछ क्षणों तक न समझा कि क्या हुआ। कुछ देर पीछे उसे इस अनन्त दुःख का पता लगने लगा। अपने कारण पिता की मृत्यु ! सदैव को पार्थक्य ! हा ! यह क्या ? कैलाश पर वज्रपात हुआ। वह एक चीख मार कर अचेत होकर गिर पड़ा।

सबेरे दाहकर्म इत्यादि हुआ, कैलाश सचेत होने पर भी खाट से न उठ सका।

अष्टम परिच्छेद

रात्रि के बारह बजे हैं। सोने वाले सब सो रहे हैं। एक कैलाश-चन्द जागता है। वह अपने पलंग पर पड़ा करवटें बदल रहा है। धीरे-धीरे वह अधिक अधीर हो चला और धीरे धीरे बकने लगा।

हा ! परमेश्वर मेरी क्यां गति होनी है। क्या मैं अब सुधर सकता हूं। नहीं-नहीं ! पढ़ना लिखना मैं भूल गया, शरीर मेरा निर्बल हो गया। मेधा शक्ति मेरी निकम्मी हो गई। मैं संसार में अब कुछ नहीं कर सकता। मैं किस मुंह को लेकर जीवित रहूं। चोरी मैंने की, व्यभिचार

मैंने किया। जेल में गया, हण्टर मैंने खाये ! क्या क्या गिनूं मैंने क्या क्या नहीं किया फिर किस मुख को लेकर मैं जीऊं। अब मैं दिन रात कमरे में बन्द रहा करूंगा परन्तु मुझे जीवन में क्या अब आनन्द न होगा ? मेरी बुद्धि निर्बल, शरीर निर्बल, आत्मा निर्बल, सब कुछ निर्बल। मेरा जीवन मुझे सदा दुःख ही देगा, किसी को मुझ से लाभ नहीं हो सकता। इस दशा में मैं क्यों जीवित रहूं। चाचा मेरा विवाह अवश्य करेंगे। एक होनहार लड़की क्यों मुझ पापी अधम दुष्ट के गले मढ़ी जाती है ? मेरा जीवन तो नष्ट हुआ ही, मैं अपने कारण एक युवती का जीवन क्यों नष्ट करने दूं। यह निश्चय है मेरी आयु थोड़ी ही है। और वह युवती विधवा हो जायगी तो व्यर्थ मुझे और मेरे कुटुम्बियों को श्राप देगी। मुझे तो श्राप का शोक नहीं क्योंकि मैं तो हूं ही इस योग्य, अपने कुटुम्बियों को क्यों दुश्राप दिलाऊँ। मेरी उपस्थिति में भी उसको क्या सुख होगा। मैं किस योग्य हूं जो अपना पति मान कर वह प्रसन्न होगी। नहीं नहीं मैं कदापि किसी को बिवाह करके दुःख न दूंगा। परन्तु मेरे चाचा जिद करेंगे तो मैं भाग जाऊंगा। परन्तु भाग कर कहां जाऊंगा। (सिर में दुहत्तड़ मारता है और लम्बी सांस लेता है) मेरा तो कोई ठिकाना भी नहीं। हां जिनको मैं अपना मित्र समझता था वह शत्रु निकले। मैं मूर्ख निखद निकला कि फिर त्रिलोकी दुष्ट के पंजे में फंस गया। मेरा सहायक कौन है ? यदि मैं सच्चिदानन्द के पास जाऊं तो वह मेरी अवश्य सहायता करेगा। अवश्य करेगा परन्तु क्या मुझको अधिकार है मैं उसको मुंह दिखाऊं ? नहीं कदापि नहीं ? हाय शोक स्वार्थरहित सच्चिदानन्द प्रीतिभाव से मुझे शिक्षा दे और मैं उसका निरादर करूं और फिर पछता कर उसकी शरण लूं ! नहीं नहीं मुझ अधम से यह न होगा। और फिर मुझे उसका पता भी तो नहीं। क्या परमेश्वर मेरी सहायता करेगा ? नहीं वह न्यायकारी है वह मेरी सहायता करेगा। शायद मैं उसकी प्रार्थना और भक्ति से सुधर जाऊं ? नहीं, मुझ अभागे बदनसीब पापी दुष्ट का सुधार असंभव है। कहावत है :—

दुःख में सुमिरण सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरण करे, दुःख काहे को होय ।।

अब प्रार्थना-वन्दना से क्या होता है ! अच्छा, अब तो मैं सब ओर से निराश होगया। अब क्या करना चाहिये। उचित तो यह है कि म अब अपना जीवन समाप्त कर दूँ। यदि छत से नीचे कूदता हूं तो शायद न मरूं। अच्छा तो वही चीज मेरे प्राण लेगी जिसको आज मैंने बड़े परिश्रम से पाया है। अच्छा तो निश्चय मैं पेट चीर कर मर जाऊंगा।

कुछ देर कैलाश इसी प्रकार स्वयं प्रश्न करता और उत्तर देता रहा। बहुत देर तक चुपचाप पड़े रहने के पश्चात् कैलाश ने अपने तकिये के नीचे से एक चमकदार चीज निकाली। उसको देखकर एक बार कैलाशचन्द्र काँपा परन्तु फिर उसने धैर्य धारण किया और उसकी धार पर हाथ फेरा। उसको उसने अपनी बगल में रख लिया। उसकी आंख डब डबा आईं उसका शरीर काँपने लगा। उसके हाथ जुड़ गये और मुख से यह करुणा भरे शब्द निकलने लगे :—

जगत् प्रभो परमेश्वर ! आप अन्तर्यामी हैं। आपके सन्मुख मुझे अपने पापों का वर्णन करना निरर्थक है।

किस विधि से मांगू क्षमा। लाज आवत है मोहि ।।
तुझ दिखत अवगुण किये। किस विधि शांति होय ।।

दयानिधे ! मैं अब इस असार संसार से मुंह काला करके आपके पास आता हूं। मुझे यथायोग्य दण्ड दीजिये ! मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं अपना अन्त करूं ! ऐ देहरादून तुझे अन्तिम प्रणाम है ! तूने मुझे गोद पाला मैं तेरा कुछ उपकार न कर सका। मुझे क्षमा करना, प्यारी माता तुझे प्रणमा है हाय मैं तेरी किंचित् मात्र भी सेवा न कर सका मुझे क्षमा करना। देखना मुझ अभागे की याद में दुःखी न होना। प्यारे पिता बस दास आपके पीछे आता है। मैं इस योग्य न था कि तुम्हारे घर उत्पन्न होता। मुझ पापी ने व्यर्थ माता की गोद को कलंकित किया। कृपालु

चाचा ! मैं किसी युवती का जीवन नष्ट नहीं करना चाहता। क्षमा करना, मैं आपकी आज्ञा पालन न कर सका। मेरे विचार से मन दुःखी न करना। लो हाथ जोड़ कर अन्तिम नमस्ते है। नेही कुटुम्वियो ! प्रणाम ! मेरा विचार छोड़ देना। मैं दुष्ट इसी योग्य हूं भारतमाता प्रणाम ! प्रणाम सहस्र वार प्रणाम ! अव तो मैं जाता हूं आशीर्वाद दो मुझ अधम को जव कभी मेरा जन्म हो इसी देश में हो और मैं तेरी सेवा कर सकूं। अव अन्त में प्यारे मित्र सच्चे प्रेमी सर्वोच्च शिक्षक विद्याधर श्री सच्चिदानन्द जी आप भी इस दुष्ट दास के प्रणाम को स्वीकार कीजिये। मैं जन्म-जन्मान्तर आपका अनुग्रहीत रहूंगा। मेरा दुःख न करना। मैं अभागा इस योग्य नहीं जो आप मेरा चिन्तन करें। अच्छा पतितपावन दीनवन्धु परमेश्वर ! इन से विदाई का प्रणाम करके आपसे मिलाप का प्रणाम है। इस समय मेरी एक प्रार्थना दयासागर स्वीकार हो, स्वीकार हो स्वीकार हो।

इतना कह कर कैलाशचन्द्र ने खुखुरी उठा ली। वायें हाथ से उठानी चाही तो बांया हाथ कांपा और वह गिर पड़ी। कैलाश को वायें हाथ पर क्रोध चढ़ आया। और यह कहता हुआ उसमें एक गहरा घाव कर दिया 'ऐन वक्त पर धोखा मरदूद कहीं का' वाया हाथ और धीरे-धीरे सारा शरीर रुधिर से रंग गया। कैलाश ने आह न की। दाहिने हाथ से खुखरी मजवूती से पकड़ कर सीने पर रख दी और कहा···एक दो···ती······

कैलाशचन्द्र तीन कह न पाया था कि जब वह सीने में खुखरी घुसेड़ देता। अचानक कमरे का दरवाजा किसी ने लात मार कर खोल डाला और झपट कर कैलाश का दायां हाथ मजवूती से पकड़ लिया और वड़े उच्च स्वर से चिल्लाया।

It is never too late to mend

अव भी सुधार का समय है हताश न हो।

नवम परिच्छेद

पाठकगण, जिस समय कैलाशचन्द्र का हाथ किसी ने पकड़ लिया तो कैलाशचन्द्र वड़ा भयभीत हुआ और उस व्यक्ति की ओर देखा तो और भी अधिक विस्मित हुआ। उसका एक हाथ अपरचित मनुष्य ने पकड़ रक्खा था। यह मनुष्य एक तपस्वी था। इसके शिर पर हाथ-हाथ भर लम्वी मूछ और दाढ़ी थी। शरीर में गले से लेकर एड़ियों तक का एक गेरुआ चोगा पहन रक्खा था। कैलाशचन्द्र गिड़गिड़ाकर वोला—"वावा जी आप कौन हैं। क्यों मुझे पकड़ते हैं।"

वावा०—हम कौन हैं यह नहीं वतला सकते। हाँ तुमको इस कारण से पकड़ते हैं कि तुम कुत्तों की मौत न मरो। यदि तुम अपना जीवन अपने लिए निरर्थक समझते हो तो इसको किसी शुभ कार्य के अर्पण कर दो।

कैलाश०—(आतुर होकर) वावा जी, अव मैं सिवाय मृत्यु के और किसी शुभ कार्य के योग्य नहीं हूँ।

वावा०—हमने आते ही कहा था 'अव भी समय है हताश न हो' यदि तुम हमारा कहना मानो तो हम तुम को सुधरने की युक्ति वतला सकते हैं।

इस वार्तालाप से जो शोर हुआ उसने कैलाश के चाचा की नींद भंग कर दी। उन्होंने आकर देखा कि एक विचित्र साधु कैलाश का हाथ पकड़ रहा है। उनको देखकर साधु जी वोले—'अच्छा हुआ जो आप स्वयं ही आ गये नहीं तो मुझे आपको जगाना पड़ता। यह आपका भतीजा है यह देखिये इस खुखरी से अपने प्राण हरना चाहता था और पेट पर इसे रख भी चुका था वह देखो थोड़ा रक्त भी निकल आया है। मैं दैवयोग से यहां आ निकला और मैंने इसको अव तक ऐसा करने से रोका है। कुछ समझाने का उद्योग किया है। अव यदि आज्ञा हो तो मैं जाऊं!

इस वात को सुनकर लक्खीमल स्त्रियों के समान रोने लगे उन्होंने

हिचकी लेते-लेते कहा 'अरे कैलाश, तू क्या करने लगा था, (बाबाजी से) महाराज आपने वह काम किया है कि जिससे मैं जन्म-जन्मान्तरों तक उऋण नहीं हो सकता। मैं आपको कैसे चला जाने दूं। आप ठहरिये मुझ तुच्छ को आज्ञा देकर कृतार्थ कीजिए। कृपा करके कैलाश को समझाइये कि वह इस विचार को त्याग दे, इतना सुनकर बाबाजी ने कहा अच्छा जो आपकी इच्छा ! मैं कैलाश को समझाता हूँ। लक्खीमल कैलाशचन्द्र के समीप पलंग पर बैठ गये वे बैठे हुए मुंह पर हाथ ढांप कर रो रहे थे।

बाबाजी—सुनो भाई कैलाश ! यदि तुम स्वीकार करो कि हमारा कथन मनोगे तो जो वक्तव्य हो कहें। इतना हम बलपूर्वक कहते हैं कि तुम अपने जीवन से प्रसन्न हो जाओगे।

कैलाश०—(हाथ जोड़ कर) मैं तो आत्मघात करता ही इस कारण था कि मैं अपना जीवन निरर्थक समझता हूं। यदि मेरा जीवन किसी अर्थ का हो सके तो निःसन्देह आपकी आज्ञा का पालन करूंगा !

बाबाजी०—हां हां, ऐसी ही बात बतलायेंगे। परन्तु सब इसी समय नहीं, इस समय तो तुम इतना ही समझो कि तुम भारत माता की कोख में पले हो। भारत माता ने तुमको अन्न वस्त्रादि दिये हैं। माता की दशा इस समय हीन है उसकी सहायता में प्राण अर्पण करके उसके प्रत्येक पुत्र को उऋण होने का उद्योग करना चाहिए। जिस शरीर को तुम इस प्रकार नाश कर डालते और जैसे सैकड़ों गिजाई कीड़े मरते हैं, तुम भी मर जाते उस शरीर को तुम यदि चाहो तो देश सेवा में प्रयोग कर सकते हो और वीरों और देशभक्तों की तरह संसार में प्रसिद्ध होकर शांतिपूर्वक इस संसार को छोड़ सकते हो।

यह मेरा जिम्मा है कि मैं तुमको इस योग्य बना सकता हूँ। बाबा जी की इस छोटी परन्तु प्रभावपूर्ण वक्तृता को श्रवण करके कैलाशचन्द्र के ज्ञान-कपाट खुल गये। उसके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने हाथ जोड़ कर प्रसन्न होकर कहा "निस्सन्देह मैं ऐसा ही करूंगा, अच्छा

साधु जी अब आप अपना परिचय दीजिए" इस समय कुछ-कुछ चांदना हो गया था।

साधू जी बोले—अच्छा अब मैं अपना परिचय देता हूं। सावधान हो जाओ। मैं वही हूं जो तुमको बेहोश करके उस मन्दिर में ले गया था, मैं वही हूं जिसने यमराज बनके तुमको उपदेश किया था। मैं वहीं हूं जिससे तुम अपने आचरण सुधारने का प्रण करके आये थे। तुमने अपनी प्रतिज्ञा और मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया और अपने साथियों को लेकर मन्दिर पर जा चढ़े। मैं वही हूं (लक्खीमल की ओर निहार कर) जो आपको आगरे के समीप स्टेशन पर मिला था और आपको कैलाशचन्द्र व त्रिलोकचन्द्र का सविस्तार वृत्तांत सुनाया था। मैं वही हूं (कैलाश-की ओर देखकर) जो तुमको जब तुम कट्टोजान के पास से उनके न मिलने के कारण ५००) रुपए लिए चले आ रहे थे, देख चुका था, मैं वही हूं जिसके उपदेश भरे शब्द तुमने राह में सुने थे, मैं वही हूं जिसने तुमको पेड़ के सूराख में गाकर अपने पास बुला लिया था। मैं वहीं हूं जिसने उस सुराख में से हाथ निकाल कर त्रिलोलचन्द्र के गाल पर चपत जमाया था। मैं वही हूं जिसने अब से कुछ देर पहले तुम्हारा खुखरी वाला हाथ पकड़ा था, परन्तु मैं वह नहीं हूं जिसको आप सन्मुख देख रहे हो।

साधु की बातों ने लक्खीमल को बड़ा विस्मित किया। परन्तु कैलाश-चन्द्र पर इसका प्रभाव कुछ और ही पड़ा। वह भय से कांपने लगा और दीनता से साधु की ओर निहारने लगा। परन्तु साधुजी की अन्तिम बात ने सबको बड़ा चकित किया। लक्खीमल रह न सके और बोले "हैं! क्या आप वह नहीं हैं जिसको हम देख रहे हैं। तो आप क्या हैं?'

साधु०—(हंस कर) कैलाशचन्द्र हमको जानता है इससे पूछिये!

कैलाश०—(आश्चर्य और भय से) नहीं मैं तो नहीं पहचानता।

साधु०—अच्छा एक लोटा पानी लाओ, सब पहचान लोगे। साधु महाराज की उलझाने वाली बातें सुन कर सब लोगों के आश्चर्य का वारा-पार न रहा। उनके सन्तोष के प्याले में एक बूंद का स्थान न रहा। वे

अधिक सन्तोष न कर सके सबके सब साधु जी की ओर अपरिमित आश्चर्य से देखने लगे। कलाश दौड़ कर एक लोटा जल ले आया। लक्खी-मल बोले "अब शीघ्र रहस्य खोलिए अधिक आश्चर्य न बढ़ाइये। साधु हंसने लगा। सब की बेचैनी और भी बढ़ गई। अन्त में साधु जी ने अपना मुख धो डाला। मुंह पर से धुल कर रंग ने बिखरे हुए दाढ़ी और मूछ के बालों को रंग दिया। अब साधू जी कुछ अल्पावस्था के प्रतीत होने लगे परन्तु कोई उन्हें पहचान न सका। साधु जी फिर हंसे अपना चोगा उतार कर फेंक दिया। अन्दर से साधु महाशय ने कमीज और धोती पहिन रक्खी थी। अब भी किसी ने उसको न पहिचाना। साधु महाशय फिर हंसे अपनी नकली जटा सर पर से उतार कर फेंक दी। अब भी किसी से न पहिचाने गए। साधु जी ने एक झटके से कान से बन्धी हुई नकली दाढ़ी उखाड़ कर पृथ्वी पर दे मारी। अब कैलाश व लक्खीमल मन में कहने लगे "हमने कहीं देखे तो हैं परन्तु ठीक नहीं कह सकते कौन हैं" अब तो साधु जी ने और झटके से नाक में अटकी हुई मूछें उखाड़ दी और मुख पर हाथ फेर कर साधु एक नवयुवक बन कर खड़े हो गए। अब तो साधु महाशय ठीक सच्चिदानन्द प्रतीत होने लगे। सच्चिदानन्द लक्खीमल के पैरों गिर पड़ा और कहा पिता जी क्षमा कीजिए मैंने आप से हाथ जुड़वा कर घोर पाप किया है, इस दृश्य ने सबको आश्चर्य से चित्र-लिखित सा कर दिया। आश्चर्य से कोई बोल भी नहीं सका। लक्खीमल ने प्रेम से आंसू भर कर सच्चिदानन्द को गले लगाया। इसके पश्चात् बहुत दिनों के बिछुड़े मित्र कैलाश और सच्चिदानन्द गले मिले। यह लोग बहुत समय तक वार्तालाप करते रहे और दिन हो जाने पर सब शौचादि से निवृत्त होने का उद्योग करने लगे।

स्नानादि से निवृत्त होकर कैलाश, सच्चिदानन्द और लक्खीमल तीनों बातें करने बैठे।

कैलाश—(सच्चिदानन्द की ओर बालकों की नांई देखता हुआ) मित्रवर! आपने मुझे अपनी भलाइयों के बोझ से दबा दिया है।

प्रियवर। यह तो बतलाओ आपने मुझ पर इतनी कृपा क्यों की, इतना कष्ट क्यों उठाया !

सच्चिदानन्द—भाई पिछले दिनों तो मैं तुम पर देश और धर्म की बहुत सी आशायें रखता था इस ही कारण तुमको सीधे रास्ते पर लाने का उद्योग किया करता था, परन्तु तत्पश्चात् जब तुम बेहद बिगड़ गये तब मैं तुम से सारी आशा छोड़ बैठा। परन्तु एक कारण मैं तुमसे प्रेम न छोड़ सका। तुमने उस रेल की घटना में मेरी प्राण रक्षा की थी तब ही से मैं तुम्हारा असीम कृतज्ञ हूं। उसी प्रकार के ऋण से उऋण होने के लिए तुम्हारी यथासम्भव सेवा में अपना धर्म समझता रहा, आज तुम्हारी प्राण-रक्षा करके उस भारी ऋण से उऋण हुआ हूं।

कैलाश०—(उसकी उदारता और अपनी नीच कृतघ्नता से लज्जित होकर) अहो मित्र तुम धन्य हो ! ऐसा कृतज्ञ और उदार पुरुष संसार में कोई न होगा और मेरे समान दुष्ट मूर्ख और कृतघ्न कोई न होगा !

लक्ष्मी०—(स्नेह दृष्टि से) वाह सच्चिदानन्द ! धन्य ! तुम देवत हो, मनुष्यों से ऐसी आशा नहीं है।

कैलाश०—अब तक का वृत्तांत तो सुनाओ।

सच्चिदा०—विस्तारपूर्वक तो फिर कभी सुनाऊंगा, इस समय यथ सम्भव संक्षेप से कहता हूं। सुनो—मैं तुमसे विदा होकर 'मुरादाबाद ' शीघ्र ही लौट आया और छुट्टियां यहीं तुम्हारे कृत्यों को देखते देखते बिताई। उस दिवस तुमको मन्दिर में विचित्र रूप में पकड़ कर ले गया और उपदेश दिया तुम्हारे साथ ही साथ आगरे में कालिज में पढ़ने लगा वहां तुम्हारी करतूत पर दृष्टि रखता रहा। तुम्हारी चोरी का मुझे जब तुम लौटकर आगरे आ गये तब पता चला। मैंने रास्ते में तुम्हारा सारा वृत्तांत कहा फिर उस पेड़ में विचित्र स्वरूप में तुम्हें उपदेश दिया तुम यहां आ गये तब भी मैं अपने एक मित्र द्वारा तुम्हारी खबर रखने लगा। मुझे अब तुम्हारे जेल जाने का तार मिला तो मैं झट यहां चला यहां। तुम्हारे पिता की मृत्यु का दुःखद समाचार मिला किस भयानक

घटना की सम्भावना में मैं भेष वदले तुम्हारे मकान के नीचे घूमने लगा और तुम्हें ... वाई।

कैलाश—तुमने इस प्रकार छिप कर मुझे क्यों उपदेश दिया ?

सच्चिदानन्द—वात यह थी कि मुझे विश्वास था कि तुम मेरी वात कदापि न मानोगे वल्कि और उल्टे मुझसे क्रुद्ध होगे। पापी हृदय वड़े संदेही होते हैं यह सोच कर मैंने इस पाखड के साथ यह उपदेश दिया कि कदाचित् तुम दैवी समझकर डर न जाओ।

कैलाश प्रसन्नता और कृतज्ञता के कारण वोल न सका। लक्खीमल ने च्चिदानन्द के सर पर हाथ फेर कर कहा 'वेटा तुम्हारी दीर्घायु हो तुमने रा भी वड़ा उपकार किया है, यदि मैं लज्जावान हूं तो तुमसे उऋण कर रहूंगा।"

□ □

R N. 28573/75 योग मन्दिर जनवरी १६७८ R. N. D. (C) 612



पूज्य माता चन्द्रवती देवी जी

आपका जन्म १० अगस्त १६०७ में नगीना (बिजनौर) में हुआ

सौम्यमूर्ति, परम धार्मिक, यज्ञ प्रेमी, दयालु, "आर्य नारी रत्न" पूज्य माता चन्द्रवती देवी ने गत ६०-७० वर्षों में दिल्ली तथा बढ़ापुर (बिजौर) में अनेक सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, कार्य किए हैं। स्वाधीनता संग्राम में आप जेल भी गईं। देश विदेश की यात्राएं भी आपने की हैं। आर्य समाज से आपको विशेष प्यार है।

इस अमूल्य पुस्तक को प्रकाशित कराने की अभिलाषा आपके मन, में थी। जिसे प्रभू ने पूर्ण किया। श्रद्धा से लेखक को श्रद्धांजलि स्वरूप प्रकाशित इस पुस्तक से आशा है कि निराशावादी व्यक्ति लाभ उठाएंगे। और अपने जीवन को सार्थक बनाएंगे। —भगवान देव

अगला अंक श्री प्रकाशवीर शास्त्री का सचित्र शानदार "श्रद्धांजलि" अंक होगा।

सम्पादक-प्रकाशक आचार्य भगवानदेव के लिए जनशक्ति मुद्रण यन्त्रालय K-१७ नवीन शाहदरा दिल्ली-३२ द्वारा मुद्रित, २, पार्क ऐवन्यू महारानी बाग नई दिल्ली-१४ से प्रकाशित



